

जिनभाषित

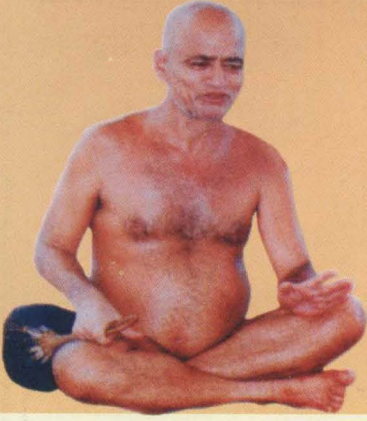
वीर निर्वाण सं. 2534



भगवान् पार्श्वनाथ : हाडवल्ली (कर्नाटक)

मार्गशीर्ष, वि.सं. 2064

दिसम्बर, 2007



आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

19
भूल नहीं पर भूलना, शिव-पथ में वरदान।
नदी भूल गिरि को करे, सागर का संधान ॥

20
प्रभु दिखते तब और ना, और समय संसार।
रवि दिखता तो एक ही, चन्द्र साथ परिवार ॥

21
सुर-पुर भी नीरस रहा, रस का नहीं सवाल।
क्षार रसातल और हैं, देती 'रसा' रसाल ॥

22
रसाल सुरभित सूँघ, छू रस का हो अनुमान।
विषय-संग बिन सन्त में, विरागता को मान ॥

23
प्रभु को लख हम जागते, वरना सोते घोर।
सूर्योदय प्रभु आप हैं, चन्द्रोदय हैं और ॥

24
कार्य देखकर हो हमें, कारण का अनुमान।
दिशा दिशान्तर में दिखा, सूर्य तभी गतिमान ॥

25
अनुभव ना शिव-पंथ में, आत्म का अविचार।
लवण मिला जल शुचि दिखे, किन्तु स्वाद तो खार ॥

26
वतन दिखे ना प्रभु उन्हें, धनान्ध मन-आधीन।
उल्लू को रवि कब दिखा, दिवान्ध दिन में दीन ॥

27
विषय-वित्त के वश हुए, ना पाते शिव-सार।
फँसे कीच क्या? चल सके, शिर पर भारी भार ॥

28
भाँति-भाँति की भ्रान्तियाँ, तरह-तरह की चाल।
नाना नारद-नीतियाँ, ले जाती पाताल ॥

29
लोकतन्त्र का भेष है, लोभ-तन्त्र ही शेष।
देश-भक्त क्या देश में, कहीं हुए निश्शेष? ॥

30
सत्ता का ना साथ दो, सदा सत्य के साथ।
बिना सत्य सत्ता सुनो, दे न सम्पदा साथ ॥

31
अनाथ नर हो धर्म बिन, धर्म-धार हो नाथ।
पुजता उगता सूर्य ही, नहीं डूबता भ्रात! ॥

32
मानी में क्षमता कहाँ?, मिला सके गुणमेल।
पानी में क्षमता कहाँ?, मिला सके घृत, तैल ॥

33
घूँघट ना हो राग का, मरघट जब लौं होय।
जमघट, पनघट पर रहे, पर ना दल-दल होय ॥

34
ठोकर खा-खा फिर रहा, दर-दर दूर दरार।
स्व-पर दया कर, दान कर, कहते दीन-दयाल ॥

35
यकीन किन-किन पर करो, किन-किन के हो दास।
उदास क्यों हो? एक ही, उपास्य के दो पास ॥

36
दूर, सहज में डूब हो, दूर रहे सब धूल।
आगत तो अभिभूत हो, और भूत हो भूल ॥

‘सूर्योदयशतक’ से साभार

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाडिया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 1100 रु.
वार्षिक 150 रु.
एक प्रति 15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे आ.पृ. 2
- ◆ बारह भावना : मुनि श्री सुव्रतसागर जी आ.पृ. 3
- ◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ आ.पृ. 4
- ◆ सम्पादकीय : पंचकल्याणकों के आध्यात्मिक स्वरूप की आवश्यकता 2
- ◆ लेख
 - सम्यग्दर्शन : श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी 4
 - दिव्यध्वनि की दिव्यता : मुनिश्री प्रणम्यसागर जी 6
 - महावीर का अहिंसाव्रत : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 11
 - ख्यातिवाद : प्रमेयकमलमार्तण्ड के प्रकाश में : डॉ० वीरसागर जैन 13
 - जरा सोचिए गाय के बारे में : श्रीमती मेनका गाँधी 16
 - बिस्किट और दिग्भ्रमित ग्राहक : श्री आदिनाथ युवक संगठन, फलटण 18
 - बुन्देलखण्ड का जैन कला-वैभव : श्री राकेश दत्त त्रिवेदी 19
- ◆ कविता
 - दिन पहाड़ से : मनोज जैन 'मधुर' 12
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 24
- ◆ कथा
 - भगवान् पार्श्वनाथ : मुनि श्री समतासागर जी 26
- ◆ ग्रन्थ समीक्षा
 - 'ऐक्यूप्रेसर फुट रिफलेक्सोलॉजी' 27
- ◆ समाचार 29-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

पंचकल्याणकों के आध्यात्मिक स्वरूप की आवश्यकता

वर्षायोग की समाप्ति के पश्चात् अब समाज में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों का शुभारंभ हो गया है। लगभग शताधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव जून 2008 तक होने की संभावना है। जब हम उत्सव को अच्छाई की दृष्टि से देखते हैं, तो महोत्सव के प्रति उज्वलता का भाव होता ही है। अतः पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोहों के आयोजन हम सबके लिए मंगलकारी हों, ऐसी हम कामना करते हैं।

तीर्थकर के पंचकल्याणक हैं- गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष ये सब जीवों के लिए कल्याणकारी होते हैं, अतः इनका कल्याणक नाम सार्थक है। आज इन महोत्सवों में लाखों से करोड़ों रुपये तक व्यय होता है और अंत में सब पूछते हैं कि इतने रुपये खर्च करने के बाद उपलब्धि क्या रही? और कुछ लोग जो आयोजन से जुड़े होते हैं, स्वयं को ठगा हुआ सा अनुभव करते हैं। अब दिनदहाड़े किसने ठग लिया? यह कहना मुश्किल है।

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में सम्पन्न हुए कुछ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों में बची हुई राशि श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, सिरपुर तथा सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर आदि के लिए प्रेषित की गई थी। यह एक सुखद पहल थी, जिसका सभी को अनुकरण करना चाहिए। कुछ स्थानों पर सीमित लक्ष्यों की पूर्ति, जैसे छात्रवृत्ति कोष, पाठशाला आदि का संचालन या धर्मशाला-निर्माण जैसे कार्य होना भी ज्ञात हुए हैं। इन कार्यों में धन का व्यय होना दान भावना के अनुकूल भी है। लेकिन कहीं-कहीं यह भी देखने में आया है कि संचित दानराशि का दुरुपयोग हुआ है या वह कुछ व्यक्तियों के द्वारा हड़प ली गई है। समाज में आज भी दानराशि के विषय में पारदर्शिता उतनी नहीं है, जितनी होनी चाहिए।

आज हमारे अनेक तीर्थक्षेत्र अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। कुछ तीर्थ ऐसे भी हैं, जो धनाभाव के कारण जर्जर हो रहे हैं। धार्मिक शिक्षावाले विद्यालय मृतप्राय हो रहे हैं। हमारे पास कोई विशाल छात्रवृत्ति फण्ड तक नहीं है, जो निष्पक्ष भाव से समाज के अभावग्रस्त विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा दिला सके। अनेक लोग धनाभाव के कारण उचित चिकित्सा भी नहीं करा पाते हैं। समाज के उपेक्षित वर्ग को मूलधारा में लाने की भी आवश्यकता है। इन सामाजिक आवश्यकताओं के साथ आज जो सबसे बड़ी कमी देखने में आ रही है, वह यह है कि पंचकल्याणक महोत्सव मात्र मनोरंजन के उत्सव बनते जा रहे हैं, जब कि इन्हें आध्यात्मिकता से अनिवार्य रूप से जुड़ा होना चाहिए, क्योंकि जिसमें आत्मा के सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाने की प्रक्रिया बताई गई हो, उसे मनोरंजन या हँसी-मजाक का माध्यम बनाना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

हम सब जानते हैं कि भारतीय संस्कृति अध्यात्म की संस्कृति है, जिसके केन्द्र में आत्मा का हित निहित है। बिना आत्मा को केन्द्र में लिए हुए जितनी भी क्रियाएँ हैं, वे बाह्य ही मानी जायेंगी। हमारी आध्यात्मिक व्यवस्था शरीर और आत्मा के संयोग पर आश्रित है।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों में साधुओं की उपस्थिति अनिवार्य होनी चाहिए। क्योंकि सत्संगति के बिना कोई भी पारमार्थिक कार्य पूर्ण नहीं होता, फिर यहाँ तो सूर्यमंत्र देकर मूर्ति को प्रतिष्ठित करना होता है। सत्संगति के पक्षधरों का कथन है कि अज्ञानी और स्नेहीजनों की संगति नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे निम्नगा नदी की तरह होते हैं, जो ऊपर की ओर नहीं ले जाते, बल्कि नीचे की ओर ही ले जाते हैं। जबकि सत्संगति का लक्ष्य ऊपर की ओर जाना होता है। सत्संगति मन को, विचारों को, कार्यों को निर्मल बनाती है, विवेक को जगाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है- "बिनु सत्संग विवेक न होई।"

दुर्जनों की संगति से विसंगति जन्म लेती है, दुर्गति मिलती है। उनसे यह उम्मीद ही व्यर्थ है कि वे आपका भला करेंगे। एक बार एक चूहा बिल्ली से आतंकित होकर भाग रहा था, तो एक व्यक्ति ने उसे अपने थैले में छिपा लिया। कुछ देर शांति रही, ज्यों ही चूहे को लगा कि खतरा टल गया है, तो वह थैले को काटकर

भाग गया। ऐसा होता है दुर्जन की संगति का फल। सत्संगति के प्रभाव में आकर व्यक्ति अपना तन, मन, धन, दान, शील एवं तप में लगाता है, सत्कार्यों को करता है, बुराइयों से बचता है और बुरे लोगों के प्रति माध्यस्थ भाव रखता है।

सामाजिक कानून एवं धार्मिक मान्यताएँ हमें दुःखों से बचाने के लिए हैं, अतः उनका पालन हमें पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जैसे आयोजनों में करना चाहिए। संसार में जन्म, जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु को दुःख इसलिए कहा गया है कि हम तन-मन-वचन के वशीभूत हैं। अगर मनुष्य मन और तन से ऊपर उठकर बिना प्रमाद के स्व-पर-हित में जुट जाये, तो न जन्म दुःखदायी होगा, न बुढ़ापा और न मृत्यु। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ठीक ही कहते हैं कि “भविष्य की उज्ज्वलता के लिए दूरदर्शन की नहीं, दूरदृष्टि की आवश्यकता है।” जिसके पास दूर दृष्टि होती है, वह लौकिक उपलब्धियों को सुख नहीं मानता, बल्कि उनके आगे जाकर आत्मा के हित का चिन्तन करता है और क्षमा, मृदुता, सरलता आदि आत्मिक गुणों की आराधना करता है। व्यक्ति और समाज आध्यात्मिक मूल्यों के सहारे ही बचते हैं, अतः हमारे लिए यही उपादेय हैं। आध्यात्मिक मूल्य अकेले परमार्थ को ही नहीं सुधारते, अपितु लोकहित में भी कार्यकारी होते हैं। अतः इनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जैसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक आयोजनों में अनदेखी नहीं करनी चाहिए।

डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन

बोध-कथा

महत्वाकांक्षी कभी बूढ़ा नहीं होता

पंचतंत्र में कहा गया है कि साधारण पुरुषों के पहले चित्त और बाद में शरीर में बुढ़ापा आता है। लेकिन कर्मशील लोगों के शरीर में भले ही आयु के लक्षण आ जाएँ, परन्तु उनके चित्त में कभी बुढ़ापे के लक्षण नहीं आते।

आचार्य विनोबा भावे ने भी कहा है कि जिसने किसी नई चीज सीखने की आशा को ही छोड़ दिया, वह सच में बूढ़ा है।

कहते हैं कि एक गाँव में एक दर्जी रहता था। एक बार उसकी सुई टूट गई। बाजार गाँव से दूर था और सप्ताह में एक ही बार लगता था, अतः दर्जी का काम कई दिनों तक रुका रहा।

जब दर्जी बाजार गया, तो इस बार दो सुईयाँ खरीदकर ले आया और एक सुई को उसने हिफाजत से रख दिया। संयोग से इस बार उसकी सुई बहुत लम्बे समय तक चली।

अचानक दर्जी को दूसरी सुई का ध्यान आया। उसने थैले से निकालकर सुई को देखा तो उसमें जंग लग चुकी थी और जिस सुई को वह काम में ले रहा था वह नई और चमकदार थी।

यही गति मनुष्य की भी है। वह तब तक बूढ़ा नहीं होता, जब तक उसके जीवन में उत्साह, कर्मशीलता और माधुर्य बना रहता है। जब तक उसके जीवन में महत्वाकांक्षा जिंदा है तब तक कोई भी उम्र उसे बूढ़ा नहीं बना सकती।

अल्पदान की महत्ता

बहुत पहले चीन के चांग चू नामक प्रदेश में वहाँ के एक महंत ने भगवान् बुद्ध की एक मूर्ति बनवाने के लिए धन इकट्ठा करने के प्रयोजन से अपने शिष्यों को घर-घर भेजा।

इसी प्रक्रिया में एक शिष्य को तिन-नू नाम की एक बालिका मिली। उसके पास एक सिक्का था। श्रद्धावश उसने अपने सिक्के को दान करना चाहा मगर महंत के शिष्य ने सिक्के को अति तुच्छ समझकर लेने से इनकार कर दिया।

कुछ दिनों के बाद जब काफी मात्रा में धन इकट्ठा हो गया, तब मूर्ति निर्माण कार्य आरंभ हुआ, परंतु बार-बार के प्रयास के बाद भी मूर्ति सुंदर ढंग से संपूर्ण नहीं हो पा रही थी। इस पर महंत को संदेह हुआ।

महंत के आदेशानुसार सभी शिष्यों ने बारी-बारी से अपने वृत्तांत सुनाए।

एक के वृत्तांत में तिन-नू का प्रसंग आया। इससे महंत को झटका लगा। महंत के आदेश से वह शिष्य उस बालिका के पास गया और क्षमा माँगते हुए उस सिक्के को सहर्ष ले लिया।

कहा जाता है कि धातुओं के घोल में उस सिक्के को मिला देने पर सहज ही एक सुंदरतम मूर्ति का निर्माण हो गया। आश्चर्य का विषय है कि अभी भी इस बुद्ध प्रतिमा के हृदयभाग के ठीक ऊपर एक सिक्के जैसा उभार है।

सम्यग्दर्शन का अर्थ आत्मलब्धि है। आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक बोध हो जाना आत्मलब्धि कहलाती है। आत्मलब्धि के सामने सब सुख धूल हैं। सम्यग्दर्शन आत्मा का महान् गुण है। इसी से आचार्यों ने सबसे पहले उपदेश दिया—‘सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग’= सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र का समूह मोक्ष का मार्ग है। आचार्य की करुणा बुद्धि तो देखो, मोक्ष तब हो जब कि पहले बन्ध हो। यहाँ पहले बन्ध का मार्ग बतलाना था फिर मोक्ष का, परन्तु उन्होंने मोक्ष-मार्ग का पहले वर्णन इसीलिए किया है कि ये प्राणी अनादिकाल से बन्धजनित दुःख का अनुभव करते-करते घबरा गये हैं, अतः पहले उन्हें मोक्ष का मार्ग बतलाना चाहिये। जैसे कोई कारागार में पड़कर दुखी होता है, वह यह नहीं जानना चाहता कि मैं कारागार में क्यों पड़ा? वह तो यह जानना चाहता है कि मैं इस कारागार से कैसे छूटूँ ? यही सोचकर आचार्य ने पहले मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

सम्यग्दर्शन के रहने से विवेकशक्ति सदा जागृत रहती है, वह विपत्ति में पड़ने पर भी कभी न्याय को नहीं छोड़ता। रामचन्द्र जी सीता को छुड़ाने के लिये लड़का गये थे। लड़का के चारों ओर उनका कटक पड़ा था। हनुमान आदि ने रामचन्द्र जी को खबर दी कि रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यदि उसे विद्या सिद्ध हो गई तो फिर वह अजेय हो जायेगा। आज्ञा दीजिये जिससे कि हम लोग उसकी विद्या की सिद्धि में विघ्न डालें।

रामचन्द्र जी ने कहा— ‘हम क्षत्रिय हैं, कोई धर्म करे और हम उसमें विघ्न डालें, यह हमारा कर्तव्य नहीं है।’

हनुमान ने कहा— ‘सीता फिर दुर्लभ हो जायेंगी’

रामचन्द्र जी ने जोरदार शब्दों में उत्तर दिया— ‘एक सीता नहीं सभी कुछ दुर्लभ हो जाय, पर मैं अन्याय करने की आज्ञा नहीं दे सकता।’

रामचन्द्र जी में इतना विवेक था, उसका कारण उनका विशुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन था।

सीता को तीर्थ-यात्रा के बहाने कृतान्तवक्र सेनापति जङ्गल में छोड़ने गया, उसका हृदय वैसा करना चाहता था क्या? नहीं, वह स्वामी की आज्ञा की परतन्त्रता से गया था। उस समय कृतान्तवक्र को अपनी पराधीनता काफी

खली थी। जब वह निर्दोष सीता को जंगल में छोड़ अपने अपराध की क्षमा माँग वापिस आने लगता है तब सीता जी उससे कहती है— ‘सेनापति! मेरा एक सन्देश उनसे कह देना। वह यह कि जिस प्रकार लोकापवाद के भय से आपने मुझे त्यागा, इस प्रकार लोकापवाद के भय से धर्म को न छोड़ देना।’

उस निराश्रित अपमानित दशा में भी उन्हें इतना विवेक बना रहा। इसका कारण क्या? उनका सम्यग्दर्शन। आज कल की स्त्री होती तो पचास गालियाँ सुनाती और अपनी समानता के अधिकार बतलाती। इतना ही नहीं सीता जी जब नारद जी के आयोजन द्वारा कुशलता के साथ अयोध्या वापिस आती हैं, एक वीरतापूर्ण युद्ध के बाद पिता-पुत्र का मिलाप होता है, सीताजी लज्जा से भरी हुई राजदरबार में पहुँचती हैं, उन्हें देखकर रामचन्द्र जी कह उठते हैं—‘तुम बिना शपथ दिये, बिना परीक्षा दिये यहाँ कहाँ?’

सीता ने विवेक और धैर्य के साथ उत्तर दिया— ‘मैं समझी थी कि आपका हृदय कोमल है पर क्या कहूँ आप मेरी जिस प्रकार चाहें शपथ लें।’

रामचन्द्र जी ने कहा— ‘अग्नि में कूदकर अपनी सच्चाई की परीक्षा दो।’

बड़े भारी जलते हुए अग्निकुण्ड में सीता जी कूदने को तैयार हुईं। रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी से कहते हैं कि सीता जल न जाय।

लक्ष्मण जी ने कुछ रोषपूर्ण शब्दों में उत्तर दिया— ‘यह आज्ञा देते समय नहीं सोचा? वह सती हैं, निर्दोष हैं, आज आप उनके अखण्ड शील की महिमा देखिये।’

उसी समय दो देव केवली की वन्दना से लौट रहे थे, उनका ध्यान सीताजी का उपसर्ग दूर करने की ओर गया। सीता जी अग्निकुण्ड में कूद पड़ीं, कूदते ही सारा अग्निकुण्ड जलकुण्ड बन गया! लहलहाता कोमल कमल सीताजी के लिए सिंहासन बन गया। पुष्पवृष्टि के साथ ‘जय सीते! जय सीते!’ के नाद से आकाश गूँज उठा! उपस्थित प्रजाजन के साथ राजा राम के भी हाथ स्वयं जुड़ गये, आँखों से आनन्द के आँसू बरस उठे। गद्गद कण्ठ से एकाएक कह उठे— ‘धर्म की सदा विजय होती है। शीलव्रत की महिमा अपार है।’

रामचन्द्र जी के अविचारित वचन सुनकर सीता जी को संसार से वैराग्य हो चुका था, पर 'निःशल्यो व्रती'- व्रती को निःशल्य होना चाहिये। इसलिए उन्होंने दीक्षा लेने से पहले परीक्षा देना आवश्यक समझा था। परीक्षा में वह पास हो गई।

रामचन्द्र जी ने उनसे कहा- 'देवि! घर चलो, अब तक हमारा स्नेह हृदय में था, पर लोक-लाज के कारण आँखों में आ गया है।'

सीताजी ने नीरस स्वर में कहा- 'नाथ! यह संसार दुःखरूपी वृक्ष की जड़ है अब मैं इसमें न रहूँगी। सच्चा सुख इसके त्याग में ही है।'

रामचन्द्र जी ने बहुत कुछ कहा- 'यदि मैं अपराधी हूँ, तो लक्ष्मण की ओर देखो, यदि यह भी अपराधी है तो अपने बच्चों लव-कुश की ओर देखो और एक बार पुनः घर में प्रवेश करो।' पर सीता जी अपनी दृढ़ता से च्युत नहीं हुई। उन्होंने उसी समय केश उखाड़ कर रामचन्द्र जी के सामने फेंक दिये और जंगल में जाकर आर्यिका बन गई। यह सब काम सम्यग्दर्शन का है, यदि उन्हें अपने आत्मबल पर विश्वास न होता, तो वह क्या यह सब कार्य कर सकती थीं? कदापि नहीं!

अब रामचन्द्र जी का विवेक देखिये। जो रामचन्द्र सीता के पीछे पागल हो रहे थे, वृक्षों से पूछते थे कि क्या तुमने मेरी सीता देखी है? वही जब तपश्चर्या में लीन थे सीता के जीव प्रतीन्द्र ने कितने उपसर्ग किए पर वह अपने ध्यान से विचलित नहीं हुये। शुक्लध्यान धारण कर केवली अवस्था को प्राप्त हुए।

सम्यग्दर्शन से आत्मा में प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण प्रकट होते हैं, जो सम्यग्दर्शन के अविनाभावी हैं। यदि आप में यह गुण प्रकट हुये हैं, तो समझ लो कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। कोई क्या बतलाया कि तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि। अप्रत्याख्यानावरण कषाय का संस्कार छह माह से ज्यादा नहीं चलता। यदि आपमें किसी से लड़ाई होने पर छह माह से बाद तक बदला लेने की भावना रहती है, तो समझ लो अभी हम

मिथ्यादृष्टि हैं। कषाय के असंख्यात-लोक-प्रमाण स्थान हैं। उनमें उनका स्वरूप यों ही शिथिल हो जाना प्रशम गुण है। मिथ्यादृष्टि अवस्था के समय इस जीवकी विषयकषाय में जैसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति होती है, वैसी सम्यग्दर्शन होने पर नहीं होती। यह दूसरी बात है कि चारित्रमोह के उदय से वह उसे छोड़ नहीं सकता हो, पर प्रवृत्ति में शैथिल्य अवश्य आ जाता है।

प्रशम का एक अर्थ यह भी है, जो पूर्व की अपेक्षा अधिक ग्राह्य है- 'सद्यः कृतापराधी जीवों पर भी रोष उत्पन्न नहीं होना' प्रशम कहलाता है। बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करते समय रामचन्द्र जी ने रावण पर जो रोष नहीं किया था वह इसका उत्तम उदाहरण है।

प्रशम गुण तब तक नहीं हो सकता, जब तक अनन्तानुबन्धी-सम्बन्धी क्रोध विद्यमान है। उसके छूटते ही प्रशम गुण प्रकट हो जाता है। क्रोध ही क्या अनन्तानुबन्धी-सम्बन्धी मान माया लोभ-सभी कषाय प्रशमगुण के घातक हैं।

संसार और संसार के कारणों से भीत होना ही संवेग है। जिसके संवेग गुण प्रकट हो जाता है वह सदा आत्मा में विकार के कारणभूत पदार्थ से जुदा होने के लिये छटपटाता रहता है।

सब जीवों में मैत्री भाव का होना ही अनुकम्पा है। सम्यग्दृष्टि जीव सब जीवों को समान शक्ति का धारी अनुभव करता है। वह जानता है कि संसार में जीव की जो विविध अवस्थाएँ हो रही हैं, उनका कारण कर्म है, इसलिए वह किसी को नीचा-ऊँचा नहीं मानता। वह सबमें समभाव धारण करता है।

संसार, संसार के कारण, आत्मा और परमात्मा आदि में आस्तिक्य भाव का होना ही आस्तिक्य गुण है। यह गुण भी सम्यग्दृष्टि में ही प्रकट होता है, इसके बिना पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये उद्योग कर सकना असम्भव है।

ये ऐसे गुण हैं जो सम्यग्दर्शन के सहचारी हैं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव में होते हैं।

वर्णा-वाणी १/३२८-३३३

अपनी मनोवृत्ति पर नियंत्रण करना ही आत्मानुशासन है। मन पर नियंत्रण इन्द्रिय नियंत्रण का कारण है। इन्द्रियों का नियंत्रण होने पर ही संसारपरिभ्रमण (शांत) वश में हो सकता है। जो मन के आधीन है, वह इन्द्रियाधीन होता हुआ संसार चक्र से छूट नहीं सकता।

दिव्यध्वनि की दिव्यता

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी

(संघस्थ- आचार्य श्री विद्यासागर जी)

सभी तीर्थकरों ने अपनी दिव्यध्वनि से समय-समय पर इस भव्यलोक को उपदेश देकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया है। दिव्यध्वनि के सम्बन्ध में कुछ विद्वान् मनीषी प्रायः एक मत नहीं देखे जाते हैं। उपलब्ध आगम के परिप्रेक्ष्य में उन्हीं में से कुछ धारणाओं की चर्चा यहाँ करना है। यह तो स्पष्ट है कि केवली भगवान् मनुष्य की तरह नहीं बोलते और न देवों की तरह। उनका उपदेश दिव्यध्वनि के माध्यम से होता है। वह ध्वनि दिव्य है, क्योंकि अन्य ध्वनियों से विलक्षण है। 'वह जिनेन्द्र भगवान् का वचन गंभीर है, मीठा है, अत्यन्त मनोहारी है, दोष रहित है, हितकारी है, कंठ, ओष्ठ आदि वचन के कारणों से रहित है, वायु के रोकने से प्रगट नहीं है, स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थों का कहनेवाला है, सब भाषामयी है, दूरस्थ व निकटस्थ को समान सुनाई देता है, समतारूप है, वह उपमा रहित है, वह वचन हमारी रक्षा करे।'^१

विसंगति १— कुछ मनीषियों का कहना है कि 'अर्हत तीर्थकर की दिव्यध्वनि में अक्षर नहीं होते। इसका नाम ध्वनि है, भाषा नहीं है। भाषा में अक्षर होते हैं, ध्वनि में अक्षर नहीं होते। यदि भगवान् की वाणी साक्षर होती। तो इसे भाषा कहा जाता। अतः यह ध्वनि निरक्षर होती है।'

विचार करें कि क्या भाषा अक्षरात्मक ही होती है? क्या जिसमें अक्षर नहीं होते उसे भाषा नहीं कहते हैं? नहीं, नहीं, यह बात उचित नहीं है क्योंकि शब्द दो प्रकार के होते हैं— 'एक भाषात्मक और दूसरे अभाषात्मक/भाषात्मक शब्द अक्षर और अनक्षर के भेद से दो प्रकार के हैं। अक्षरीकृत शब्दों से शास्त्र की अभिव्यक्ति होती है, अक्षरात्मक शब्द संस्कृत और अन्य के भेद से आर्य और म्लेच्छों के व्यवहार का कारण होता है। अनक्षरात्मक शब्द दो इन्द्रिय आदि जीवों के होते हैं। अतिशय केवलज्ञान के द्वारा वस्तु स्वरूप प्रतिपादन में कारणभूत भी अनक्षरात्मक भाषात्मक शब्द होते हैं।'^२ इन आर्य वचनों से यह स्पष्ट हुआ कि भाषा अक्षरात्मक ही नहीं, अनक्षरात्मक भी होती है। जिसमें अक्षर नहीं हो, उसे भी भाषा कहते हैं। अतः केवली भगवान् के वचन भावात्मक होते हैं और अनक्षरात्मक भी।

अब हम श्री वीरसेनस्वामी के द्वारा किये गये शंका-

समाधान पर दृष्टिपात करते हैं। शंका— 'केवली की ध्वनि को साक्षर मान लेने पर उनके वचन प्रतिनियत एक भाषा रूप ही होंगे अनेक भाषा रूप नहीं हो सकेंगे?'

समाधान— नहीं, क्योंकि क्रमविशिष्ट, वर्णात्मक, अनेक पंक्तियों के समुच्चय रूप और अलग-अलग प्रत्येक श्रोता में प्रवृत्त होनेवाली ऐसी केवली की ध्वनि सम्पूर्ण भाषारूप होती है, ऐसा मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है।^३ इस समाधान से निष्कर्ष निकलता है कि केवली भगवान् की दिव्यध्वनि सम्पूर्ण भाषा रूप होती है, क्रम से प्रवृत्त होती है और वर्णात्मक अर्थात् अक्षरात्मक होती है। वह दिव्यध्वनि साक्षर होते हुए भी अनेक भाषा रूप है। उस दिव्यध्वनि में अनेक पंक्तियाँ निकलती हैं, जिन्हें सुनकर श्रोतागण अपने-अपने क्षयोपशम के अनुसार ग्रहण कर लेते हैं। श्रोतागण जिस प्रकार का क्षयोपशम लिये हुए होते हैं और जिस भाषा में उपदेश ग्रहण की क्षमता रखते हैं, उन्हें उसी भाषा में उपदेश ग्रहण हो जाता है। 'केवली के वचन इसी भाषा रूप हैं, ऐसा निर्देश नहीं किया जा सकता है, इसलिये उनके वचन ध्वनिरूप हैं, यह बात सिद्ध हो जाती है।'^४ अनक्षरी भाषा को समझना प्रत्येक साधारण श्रोता के लिये संभव नहीं है। जो अक्षरज्ञान रखते हैं, वे उसी अक्षरात्मक भाषा को समझ सकते हैं, यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है। यदि दिव्यध्वनि सर्वथा अनक्षरात्मक हो तो फिर अक्षरज्ञान रखनेवाले श्रोता को कुछ भी समझ में नहीं आयेगा, किन्तु ऐसा होता नहीं है। 'केवली के ज्ञान के विषयभूत पदार्थ अनन्त होने से और श्रोता के आवरण कर्म का क्षयोपशम अतिशयरहित होने से केवली के वचनों के निमित्त से संशय और अनध्यवसाय की उत्पत्ति हो सकती है।'^५ श्रोता को जितना क्षयोपशम होता है, उतना तो वह समझ लेता है और अन्य अनन्त अर्थ को ग्रहण करने की क्षमता न होने से उस दिव्यध्वनि से श्रोता के मन में संशय और अनध्यवसाय उत्पन्न हो जाते हैं। इस संशय और अनध्यवसाय को उत्पन्न कराने का कारण केवली के अनुभय-वचन योग है। साथ ही जो सत्यवचन-योग है, वह श्रोता को स्पष्ट अर्थ का बोध करा देता है। इस प्रकार उक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि वीरसेन

स्वामी जी दिव्यध्वनि को साक्षर, भाषारूप स्वीकार करते हैं। अतः दिव्यध्वनि भाषात्मक होने के साथ-साथ किन्हीं आचार्यों के अभिप्राय से अनक्षरात्मक और किन्हीं के अभिप्राय से अक्षरात्मक सिद्ध होती है। इस प्रकार होते हुए भी हमें आचार्यों के अभिप्राय में अन्तर या भेद भिन्नता नहीं मानना चाहिये, अपितु मुख्य, गौण विवक्षा से कथन किया है, ऐसा स्वीकारना चाहिये। इसका कारण यह है कि आचार्य श्री वीरसेन जी ने कहा है कि- 'अणवगय-तित्थयरवयण विणिग्गिय-अक्खराक्खरप्पयबहु-लिंगालिं गियबीज- पदाणं'^६ अर्थात् तीर्थकर के वचन अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक होते हैं। यहाँ वचनों को उभयरूप स्वीकार करके उन्होंने विस्वादा समाप्त कर दिया है। अतः इन आगम प्रमाणों से दिव्यध्वनि भाषात्मक होने के साथ-साथ कथंचित् अक्षरात्मक और कथंचित् अनक्षरात्मक है, यह सिद्ध हुआ।

जब यह सिद्ध हो गया कि दिव्यध्वनि साक्षर और अनक्षर दोनों रूप है, तब एकान्तरूप से अनक्षर ही मानने-बाले विद्वानों के उस सम्बन्ध में दिये गये अनेक तर्क अपने आप निःसार सिद्ध हो जाते हैं। जैसा कि वे विद्वान् कहते हैं कि 'इस ध्वनि में कंठ, तालु, ओष्ठ आदि का उपयोग नहीं होता है, क्योंकि अक्षरों के उच्चारण में कंठ, तालु आदि का उपयोग करना पड़ता है, जहाँ अक्षरोच्चारण नहीं है, वहाँ कंठ, तालु आदि का उपयोग भी नहीं होता है।'^७ यह कथन और युक्ति दोनों ही गलत हैं। अक्षरों के उच्चारण में कंठ, तालु आदि का प्रयोग करना सामान्य छद्मस्थ मनुष्य की अपेक्षा आवश्यक है। छद्मस्थ मनुष्य की तुलना सर्वज्ञ-देव से नहीं की जा सकती है। तीर्थकर सर्वज्ञ की ध्वनि कण्ठ, तालु आदि के स्पर्श के बिना ही निकलती है, यह उनकी वाणी का अतिशय है। कहा भी है-

'जिनभाषाऽधरस्पन्दमन्तरेण विजुंभिता।

तिर्यग्देवमनुष्याणां दृष्टिमोहमनीनशत्॥'^८

अर्थात् ओष्ठकम्पन के बिना उत्पन्न हुई जिनेन्द्र की भाषा ने तिर्यञ्च, देव तथा मनुष्यों की दृष्टिसम्बन्धी मोह दूर किया था। अन्यत्र भी कहा है- 'कण्ठोष्ठादि-वचोनिमित्त-रहितं नो वातरोधोद्गतम्।'^९ अर्थात् कंठ, ओष्ठ आदि निमित्त-रहित भगवान् के वचन होते हैं। अतः कंठ ओष्ठ आदि का स्पन्दन नहीं है, ऐसा कहकर दिव्यध्वनि को अनक्षरात्मक ही मानने का आग्रह आगम-विरुद्ध है। दिव्यध्वनि में उभयरूपता सिद्ध होने पर भी आचार्यों ने मुख्यता से

दिव्यध्वनि को अक्षरात्मक ही माना है। कहा भी है- 'साक्षर एव च वर्ण समूहानैव विनार्थं गतिर्जगति स्यात्॥'^{१०} अर्थात् दिव्यध्वनि अक्षरसहित ही है, यहाँ प्रयुक्त 'एव' शब्द 'ही' अर्थ का वाचक है। अतः एवकार के साथ साक्षर कहने के अभिप्राय से स्पष्ट होता है कि दिव्यध्वनि को मुख्यरूप से अक्षरात्मक स्वीकारा है। इस बात को 'ही' अर्थ के साथ कहने का कारण स्वयं उसी कारिका में आगे बताते हैं कि अक्षरों के समूह के बिना लोक में अर्थ का बोध नहीं होता है। अर्थात् जनसाधारण अक्षरज्ञान के बिना कुछ भी समझने में सक्षम नहीं होता है। अन्यत्र भी इसी बात को कहा है कि- 'कितने ही लोग कहते हैं कि सर्वज्ञ के शब्द अनक्षरात्मक होते हैं, उनके शब्द वर्णरहित होते हैं, नष्टवर्णात्मक ही ध्वनि होती है। किन्तु उनका इस प्रकार कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनक्षरात्मक शब्दों से अर्थ की प्रतीति का अभाव है।'^{११}

विसंगति २- यह दिव्यध्वनि अर्धमागधी भाषा में होती है, यह अर्धमागधी भाषा क्या है? तो इसका उत्तर कुछ लोग यह देते हैं कि 'भगवान् का समवशरण सबसे पहले विपुलाचल पर्वत (बिहार) पर रचा गया। उस समय बिहार को मगध बोला जाता था। समवसरण में जो मनुष्य श्रोता उपस्थित थे, उनमें आधी संख्या में मगधदेश के श्रोता थे। और आधी संख्या मगध के अलावा अन्य देश के श्रोताओं की थी। अतः देव भगवान् की वाणी को आधी मगधभाषारूप में तथा आधी अन्य सर्वभाषा के रूप में परिणामाते थे, इसलिये उसका नाम अर्धमागधी पड़ा। यह महावीर के समय दिव्यध्वनि का रूप थी।'^{१२}

इस बात पर विचार करते हैं कि क्या दिव्यध्वनि का स्वरूप अलग-अलग तीर्थकरों के समय अलग-अलग होता है। यदि ऐसा मान भी लें तो फिर यह स्वीकारना पड़ेगा कि 'सार्वार्धमागधीया भाषा' यह जो पद देवकृत चौदह अतिशयों को बताते हुए नन्दीश्वर भक्ति में श्री पूज्यपाद देव ने दिया है, वह मात्र महावीर भगवान् की दिव्यध्वनि को दृष्टि में रख कर दिया है। पर ऐसा मानना कदापि उचित नहीं होगा, क्योंकि नन्दीश्वरभक्ति में भगवान् के अतिशयों का वर्णन सर्व तीर्थकरों के लिये समान रूप से दिया है। यदि ऐसा मान भी लें तो अन्य तीर्थकरों के लिये यह अतिशय दूसरा होगा, उसमें फिर सार्वार्धकनडी या सार्वार्धमराठी ये पद आयेंगे। क्या यह बात आगम को समझनेवाले के गले उतरेगी? नहीं। ऐसी स्थिति में हमेशा

सर्वत्र विहार करनेवाले महावीर भगवान् की दिव्यध्वनि का यह अतिशय सार्वार्धमागधी के रूप में नहीं कहा जा सकेगा। क्या मगधदेश में ही भगवान् का विहार होता है, जो यह कहा गया कि समवशरण में आधी संख्या में मगधदेश के श्रोता थे। यह बात तो भगवान् महावीर स्वामी के लिये भी पूर्णरूप से घटित नहीं होती, तब फिर अन्य तीर्थकरों के विषय में तो यह बात कदापि घटित नहीं हो सकती है। उस समय बिहार को मगध कहा जाता था, वहाँ के श्रोता समवशरण में अधिक थे, ये सब मनगढ़न्त युक्तियाँ हैं, इन युक्तियों का आगम में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। कुछ परवर्ती भट्टारक टीकाकारों ने इस सार्वार्धमागधी भाषा का व्युत्पत्ति-अर्थ आधी मागधी भाषा व आधी सर्वभाषा रूप निकाला है। वे लिखते हैं- 'अर्ध भगवद्भाषाया मगधदेशभाषात्मकं अर्धं च सर्वभाषात्मकम्।' ^{१३} अर्थात् तीर्थकर की दिव्यध्वनि आधी मगधदेश की भाषारूप और आधी सर्वभाषारूप होती है। मगधदेश से दिव्यध्वनि को जोड़कर इस प्रकार की व्याख्या करना केवल भगवान् महावीर के लिये कथंचित् भले ही कही जाय, पर सभी तीर्थकरों के अतिशयों में यह व्याख्या लागू नहीं हो सकती है। यदि कोई इस प्रकार माने, तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि सभी तीर्थकरों ने मगधदेश में ही अपना उपदेश दिया, वहीं पर उनका समवसरण लगा, वहीं के श्रोताओं ने उस सभा में सर्वाधिक भाग लिया। किन्तु ऐसा कदापि नहीं है। सभी तीर्थकरों का विहार इस आर्यखण्ड में सर्वत्र होता है, हुआ है इस बात की प्रामाणिकता आगम ग्रन्थों से उपलब्ध होती है। और यह अर्धमागधी-भाषारूप अतिशय मात्र भगवान् महावीर की मुख्यता से नहीं है, क्योंकि अन्य तीर्थकरों का भी देवोपनीत यही अतिशय है। भगवान् श्री अजितनाथ की दिव्यध्वनि अर्धमागधी भाषा में थी, ऐसा उल्लेख श्री रविषेण आचार्य ने किया है, देखें-

'भाषा अर्धमागधी तस्य भाषमाणस्य नाधरौ।

चकार स्पन्दसंयुक्तावहो चित्रमिदं परम्॥' ^{१४}

अर्थात् भगवान्-अजितनाथ की भाषा अर्धमागधी भाषा थी, और बोलते समय उनके ओठों को चंचल नहीं कर रही थी, यह बड़े आश्चर्य की बात थी। अतः अब हमें इस देवोपनीत अतिशय को जो सभी तीर्थकरों के लिये है, किसी देश की भाषा से नहीं जोड़ना चाहिये। फिर प्रश्न उठता है, कि इस देवोपनीत अतिशय का अर्थ क्या है? और जब अष्ट प्रतिहार्यों में दिव्यध्वनि को गिना है, तो

फिर देवकृत अतिशय में पुनः रखने का क्या प्रयोजन है?

समाधान- आचार्य पूज्यपाददेव-रचित नन्दीश्वर-

भक्ति में इस अर्धमागधी भाषा का नाम सार्वार्धमागधी भाषा लिया है। जिसका अर्थ आचार्य प्रभाचन्द्र जी ने टीका में इस प्रकार किया है- 'सर्वेभ्यो हिता सार्व। सा चासौ अर्धमागधीया च।' ^{१५} अर्थात् जो सब का हित करनेवाली है, इसलिये सार्व है। वह ही सर्व हितकारी वाणी अर्धमागधी है। अर्थात् आधी मागधी भाषा सर्व हितकारी है। भगवान् की दिव्यध्वनि का आधा भाग जो कि मागधी भाषात्मक है सब जीवों के हित के लिये प्रवृत्त होता है इसलिये इसे सार्वार्धमागधी भाषा कहा है। यह इस टीका से व्युत्पत्ति-अर्थ निकलता है। तथा इस आधी भाषा को मागधी भाषा कहने का प्रयोजन यह है कि मगध देवों के सन्निधान से इस दिव्यध्वनि का आधा भाग सब जीवों के हित में प्रवृत्त होता है और आधा भाग बीजपदयुक्त होने से गणधर देवों के लिये ही समझना शक्य होता है। कहा भी है- 'अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरूप द्वादशां-गात्मक उन अनेक बीज पदों के प्ररूपक अर्थकर्ता तीर्थकरदेव हैं तथा बीज पदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रन्थकर्ता हैं, ऐसा स्वीकार किया गया है।' ^{१६} तथा वह दिव्यध्वनि एक होकर भी भगवान् के महात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं रूप परिणमन करके लोगों के अज्ञान अन्धकार को दूर करके उन्हें तत्त्वों का बोध कराती है। यदि दिव्यध्वनि मात्र बीजपदवाली हो, तो फिर वह गणधर परमेष्ठी को ही समझ में आ सकती है, क्योंकि उन बीजपदों को समझने के लिये बुद्धिऋद्धि आवश्यक है। किन्तु ऐसा नहीं होता है। वह समवसरण में बैठे हुए अन्य अनेक पशु, देव और मनुष्यों को भी समझ में आती है। अतः स्पष्ट होता है कि उसी एक दिव्यध्वनि में कुछ भाग ऐसा होता है, जो सर्वजन साधारण को समझ में आता है और कुछ भाग ऐसा होता है जिसे मात्र ऋद्धिधारी विशिष्ट गणधर-जन ही समझ सकते हैं। जो भाग समस्त लोगों को समझ में आता है, वह मगधदेवों के सन्निधान से सभी जीवों के पास एक साथ पहुँचता है। जिस प्रकार आजकल वक्ता की वाणी को ध्वनिवाहक यन्त्र के द्वारा दूरवर्ती श्रोताओं तक पहुँचाया जाता है, उसी प्रकार मगधदेव उस वाणी को सभी में सर्वत्र प्रसारित कर देते हैं, इसीलिये देवकृत अतिशय यह अर्धमागधी भाषा कही जाती है। सामान्यतः

सभी तीर्थकरों की ध्वनि एक योजन तक ही फैलती है— 'ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोतृहृदयहारिगभीरः।'^{१७} अर्थात् भगवान् की ध्वनि जो कि श्रोताओं का मन, हरण करनेवाली तथा गम्भीर होती है, वह एक योजन तक जाती है। यह सभी तीर्थकरों की दिव्यध्वनि की सामान्य विशेषता है। मगधदेवों के द्वारा यह ध्वनि एक योजन से अधिक क्षेत्र में भी फैलायी जाती है। भगवान् आदिनाथ का समवशरण बारह योजन का था, अतः एक योजन के बाहर व भीतर सर्वत्र एक सी वाणी सबको सुनाई दे यह कार्य इन देवों का होने से इस वाणी को सार्वार्धमागधी। नाम प्राप्त होता है। यह अनुचित भी नहीं है, क्योंकि जो सबके हित में कार्य करते हैं उनका नाम हो ही जाता है। मगधदेवों का यही मात्र कार्य है जिसके कारण भगवान् की वाणी अर्धमागधी भाषा है। यह देवकृत अतिशय में गिनी जाती है। इसके अलावा इन मगधदेवों का कोई अन्य कार्य नहीं होता है। 'मगधदेवों के निमित्त से वह वाणी संस्कृत भाषारूप परिणामन करती है।'^{१८} ऐसा कुछ मनीषियों का कहना है। पर यह कार्य भी मगधदेवों का नहीं है क्योंकि भगवान् की दिव्यध्वनि का ही यह गुण है कि वह सभी भाषाओं और कुभाषाओं रूप परिणामन कर जाती है। जैसा कि कहा है— 'दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्वभाषा-स्वभावपरिणाम-गुणप्रयोज्यः।'^{१९} और भी कहा है कि— 'जिस प्रकार आकाश से बरसा पानी एक रूप होता है, परन्तु पृथिवी पर पड़ते ही वह नाना रूप दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार भगवान् की वाणी यद्यपि एक रूप थी तथापि सभा में सब जीव अपनी-अपनी भाषा में उसका भाव पूर्णतः समझते थे।'^{२०} और भी कहा है कि—

नाना भाषात्मिकां दिव्यभाषामेकात्मिकामपि।

पृथयन्तमयत्नेन हृदध्वान्तं नुदतीं नृणाम्॥

अर्थात्— एक रूप होकर भी आपकी दिव्यभाषा नाना भाषात्मकरूप होकर बिना प्रयत्न के विस्तार को प्राप्त होती हुई मनुष्यों के हृदयान्धकार को दूर करती थी। इसी प्रकार 'तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम्।'^{२२} अर्थात् हे भगवान्, आपकी वाणीरूपी अमृत सभी भाषा के स्वभाववाली है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी भाषारूप परिणामन करना यह दिव्यध्वनि का अपना स्वाभाविक गुण है, अन्य किसी के माध्यम से संस्कृत या मागधी या प्राकृत आदि भाषा रूप परिणामन नहीं होता है। अतः मगधदेवों का कार्य मात्र ध्वनिविस्तारकयन्त्र की तरह सबको वाणी उपलब्ध कराना

है, इसी से यह सार्वार्धमागधी नाम पड़ा है, यह सुतरां सिद्ध होता है।

विसंगति ३— यह दिव्यध्वनि सर्वांग से निकलती है, क्योंकि यह ध्वनि है।

ऐसा कोई आगमप्रमाण नहीं है, जिसमें लिखा हो कि दिव्यध्वनि सर्वांग से निकलती है। जिस समय दिव्यध्वनि खिरती है, उस समय तालु, दन्त, ओष्ठ, कण्ठ आदि का हलन-चलनरूप व्यापार नहीं होता, उस समय भगवान् का मुख भी नहीं हिलता, इससे कुछ लोग यह अनुमान लगाते हैं कि भगवान् की ध्वनि मुख से नहीं निकलती अतः सर्वांग से निकलती है। पर ऐसा मानना नितान्त गलत है। यह तो भगवान् का अतिशय है कि कण्ठ, ओष्ठ आदि के व्यापार के बिना ही ध्वनि खिरती है। इसीलिये श्री पूज्यपाद देव कहते हैं— 'जयन्ति यस्याऽवदतोऽपि भारती।'^{२३} अर्थात् भगवान् बोलते नहीं है, फिर भी उनकी वाणी का वैभव जयवन्त है। यह कोई विरोधभास नहीं, किन्तु सर्वज्ञता का परिणाम है। जिस प्रकार केवली की सभी क्रियाएँ उठना, बैठना, बोलना आदि बिना इच्छा के होती हैं, यह जिस प्रकार छद्मस्थों के लिये विचित्र बात है, उसी प्रकार केवली का ओठ, कंठ आदि के व्यापार के बिना बोलना एक वैचित्र्य है, अतिशय है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने कहा है— 'समणमुहग्गदमट्टं'^{२४} अर्थात् सर्वज्ञ महाश्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थ है। इसी सूत्र की टीका में श्री जयसेन महाराज ने यह लिखा है कि सर्वज्ञदेव के वचन मुख से निकलते हैं। साथ ही 'गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं, कण्ठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतं'^{२५} इस गाथा से ही यह भी कहा है कि वचनों के निमित्तभूत जो कण्ठ, ओष्ठ आदि का चलना है, वह उनमें नहीं था। जिससे स्पष्ट है कि मुख से ध्वनि निकलना और कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि का न चलना, ये दोनों विरोधाभास नहीं हैं। सर्वत्र यही कहा है कि दिव्यध्वनि भगवान् के मुखारविन्द से निकलती है— 'स्वयंभुवो मुखाम्भोजाज्जाता चित्रं सरस्वती'^{२६} अर्थात् स्वयम्भू भगवान् के मुखकमल से यह विचित्र सरस्वती निकलती है। 'केवलिमुखारविन्द-विनिर्गतो दिव्यध्वनिः।'^{२७} अर्थात् केवली के मुखारविन्द से निकलती है दिव्यध्वनि। 'तित्थयरवयणादो दिव्वज्झुणी विणिग्गयी।'^{२८} अर्थात् तीर्थकर के मुख से दिव्यध्वनि निकलती है। इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है कि सभी आचार्य दिव्यध्वनि का मुख से ही निकलना मानते हैं सर्वांग से नहीं।

इन तीनों मुख्य विसंगतियों का आगम के परिप्रेक्ष्य में यहाँ समाधान किया गया है। हमें किसी भी बात को मात्र युक्तियों से नहीं मानना चाहिये। आगम पहले होता है, युक्ति बाद में। हाँ, आगम को पुष्ट करने के लिये यदि युक्ति का सहारा लिया जाता है, तो वह अति उत्तम है। ऐसा हमारे श्रीगुरु का उपदेश है।

सन्दर्भ

१. श्री पञ्चास्तिकाय गाथा २ की ता. वृत्ति टीका में उद्धृत गाथा का अर्थ।
२. श्री राजवार्तिक सूत्र ५/२४
३. श्री धवल पुस्तक १ पृ. २८६
४. श्री धवल पुस्तक १ पृ. २८६
५. वही
६. श्री धवल पु. ९, पृ. ५९
७. दिव्यध्वनि एक लेख/ लेखक- डॉ. लाल बहादुर जैन शास्त्री दिल्ली।
८. श्री हरिवंश पुराण २/११३
९. श्री पञ्चास्तिकाय गाथा २ ता. वृत्ति टीका

१०. श्री आदिपुराण २३/७३
११. तत्त्वार्थवृत्ति सूत्र ५/२
१२. डॉ. लाल बहादुर शास्त्री का लेख- 'दिव्यध्वनि'
१३. श्री दर्शनप्राभृत टीका ३५/२८/१२
१४. श्री पद्यपुराण ५/९९०
१५. क्रियाकलाप
१६. श्रीधवल पु. ९
१७. नन्दीश्वरभक्ति श्री पूज्यपाददेव/श्लोक ५८
१८. श्री दर्शनप्राभृतटीका ३५/२८/१३
१९. भक्तामरस्तोत्र ३५
२०. श्री हरिवंशपुराण ५८/१५
२१. श्री आदिपुराण ३३/१२०
२२. श्री स्वयंभूस्तोत्र काव्य ९७
२३. श्री समाधितन्त्र/कारिका २
२४. श्री पञ्चास्तिकाय/गाथा २
२५. श्री पञ्चास्तिकाय/गाथा २/ता. वृत्ति टीका
२६. श्री आदिपुराण/८४
२७. श्री नियमसार/ता.वृ./१७४
२८. श्री धवल/पु. ५

बहुमान

भोजपुर में अष्टमी के दिन आचार्यश्री ने केशलुंच किया। तदुपरांत जंगल की ओर चले गये। थोड़ी देर बाद मैं भी जंगल गया। वहाँ देखा पूज्य गुरुदेव एक बड़ी शिला पर विराजमान हैं, दोनों हाथ जोड़े हुए आँख बंद किये हुये कुछ पाठ पढ़ रहे हैं। मैं उनके समीप में ही पहुँच गया। मुझे ऐसा लगा रहा था जैसे मैंने उनके दर्शन करके सब कुछ पा लिया हो, हृदय गद्गद् हो उठा। उसी शिला पर नीचे की ओर मैं भी हाथ जोड़कर बैठ गया। आचार्य महाराज लगातार अनेक बार एक ही कारिका का पाठ कर रहे थे। वह कारिका थी-

सर्व निराकृत्य विकल्पजालं,

संसारकान्तारनिपातहेतुम्।

विविक्तमात्मानमवेक्षमाणो,

निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

यह सामायिक पाठ की कारिका है। थोड़ी देर बाद गुरुदेव ने आँखे खोलों, बोले- क्यों तुम आ गये? मैंने हाथ जोड़कर कहा-जी आचार्य श्री मैं आ गया। हमारा सौभाग्य है कि जिन कारिकाओं को गुफाओं में,

जंगलों में बैठकर आचार्यों ने लिखा होगा, उन्हीं कारिकाओं को आचार्य महाराज के श्रीमुख से इन्हीं शिलाओं पर बैठकर सुन रहा हूँ। आचार्य महाराज जी कहते हैं- हाँ जो कारिकायें अच्छी लगती हैं, उनका मैं बार-बार पाठ करता हूँ, उन कारिकाओं की माला भी फेर लेता हूँ, कम से कम अपन इन कारिकाओं का ही पाठ कर लें। यह सुनकर ऐसा लगा मानों आचार्य महाराज का जिनवाणी के प्रति, पूर्वाचार्यों के प्रति कितना बहुमान है। शायद यही कारण है उनके प्रत्येक शब्द में सागर जैसी गहराई दिखाई देती है। उनके प्रत्येक वाक्य मंत्र का काम करते हैं। जीवन में नई प्रेरणा एवं उमंग भर देते हैं।

आगे उन्होंने बताया कि यह संसार विकल्पों का जाल है और विकल्प संसार के कारण हैं, इन्हें छोड़कर आत्मस्थ होना चाहिए, निर्विकल्प होना चाहिए, तभी संसार से मुक्ति मिल सकती है।

मुनि श्री कुंथुसागर-कृत 'संस्मरण' से साभार

महावीर का अहिंसाव्रत

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

अहिंसा बड़ी कठिन साधना है। उसका साधन संयम है, मैत्री है, अद्रोह-बुद्धि है और सबसे बढ़कर सत्य की परम उपलब्धि है।

भगवान् महावीर से बड़ा अहिंसाव्रती कोई नहीं हुआ। उन्होंने विचारों के क्षेत्र में क्रांतिकारी अहिंसक वृत्ति का प्रवेश कराया। विभिन्न विचारों और विश्वासों के प्रत्याख्यान में जो अहंकारभावना है, उसे भी उन्होंने पनपने नहीं दिया। अहंकार अर्थात् अपने आपको प्रवाह से पृथक् समझने की वृत्ति। सत्य को 'इदमित्थं' रूप में जानने का दावा भी अहंकार का ही एक रूप है। सत्य अविभाज्य होता है और उसे विभक्त करके देखने से मत-मतांतरों का आग्रह उत्पन्न होता है। आग्रह से सत्य के विभिन्न पहलू ओझल हो जाते हैं।

पहली बात तो यह है कि केवल वाणी द्वारा उपदेश या कथनी कभी उचित लक्ष्य तक नहीं ले जाती। उसके लिए आवश्यक है कि वाणी द्वारा कुछ भी कहने के पहले वक्ता का चरित्र शुद्ध हो। उसका मन निर्मल होना चाहिए, आचरण पवित्र होना चाहिए। जिसने मन, वचन और कर्म को संयत रखना नहीं सीखा, इनमें परस्पर अविरुद्ध रहने की साधना नहीं की, वह जो कुछ भी कहेगा, अप्रभावी होगा।

हमारे पूर्वजों ने मन, वचन, कर्म पर संयम रखने को एक शब्द में 'तप' कहा है। तप से ही मनुष्य संयतेन्द्रिय या जितेन्द्रिय होता है, तप से ही वह 'तपस्वी' होता है, तप से ही वह कुछ कहने की योग्यता प्राप्त करता है। विभिन्न प्रकारों के संस्कारों और विश्वासों के लोग तर्क से या वाग्मिता से नहीं, बल्कि शुद्ध, पवित्र, संयत चरित्र से प्रभावित होते हैं। युगों से यह बात हमारे देश में बद्धमूल हो गई है। इस देश के नेतृत्व का अधिकारी एक मात्र वही हो सकता है, जिसमें चरित्र का महान् गुण हो, दुर्भाग्यवश वर्तमानकाल में इस ओर कम ध्यान दिया जा रहा है। जिसमें चरित्रबल नहीं, वह देश का नेतृत्व नहीं कर सकता।

भगवान् महावीर जैसा चरित्र-सम्पन्न, जितेन्द्रिय, आत्मवशी, महात्मा मिलना मुश्किल है। सारा जीवन उन्होंने आत्म-संयम और तपस्या में बिताया। उनके समान दृढ-

संकल्प के आत्मजयी-महात्मा बहुत थोड़े हुए हैं। उनके मन, वचन और कर्म एक दूसरे के साथ पूर्ण सामंजस्य में थे। इस देश का नेता उन्हीं जैसा तपोमय महात्मा ही हो सकता है। हमारे सौभाग्य से इस देश में तपस्वियों की सदा बहुलता रही है। केवल चरित्र-बल ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ और कुछ भी आवश्यक है।

यह और कुछ भी हमारे मनीषियों ने खोज निकाला था। वह था अहिंसा, अद्रोह और मैत्री। अहिंसा परमधर्म है, सनातन धर्म है, वह एकमात्र धर्म है, आदि बातें इस देश में सदा मान्य रही हैं। मन से, वचन से, कर्म से अहिंसा का पालन कठिन साधना है। सिद्धांतरूप में प्रायः सभी ने इसे स्वीकार किया है, पर आचरण में इसे सही-सही उतार लेना कठिन कार्य है। शरीर द्वारा अहिंसा का पालन अपेक्षाकृत आसान है, वाणी द्वारा कठिन है और मन द्वारा तो नितान्त कठिन है। तीनों में सामंजस्य बनाए रखना और भी कठिन साधना है।

इस देश में 'अहिंसा' शब्द को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह ऊपर-ऊपर से निषेधात्मक शब्द लगता है, लेकिन यह निषेधात्मक इसलिए है कि आदिम सहजात-वृत्ति को उखाड़ देने से बना है। अहिंसा बड़ी कठिन साधना है। उसका साधन संयम है, मैत्री है, अद्रोहबुद्धि है और सबसे बढ़कर सत्य की परम उपलब्धि है। अहिंसा कठोर संयम चाहती है। इंद्रियों और मन का निग्रह चाहती है, वाणी पर संयत अनुशासन चाहती है और परम सत्य पर सदा जमे रहने की अविश्वसिदिनी बुद्धि चाहती है।

मुझे भगवान् महावीर के इस अनाग्रही रूप में, जो सर्वत्र सत्य की झलक देखने का प्रयास है, परवर्तीकाल के अधिकारी भेद, प्रसंग-भेद आदि के द्वारा सत्य को सर्वत्र देखने की वैष्णवप्रवृत्ति का पूर्वरूप दिखाई देता है। परवर्ती जैन आचार्यों ने स्याद्वाद के रूप में इसे सुचिंतित दर्शनशास्त्र का रूप दिया और वैष्णव आचार्यों ने सबको अधिकारी भेद से स्वीकार करने की दृष्टि दी है। भगवान् महावीर ने सम्पूर्ण भारतीय मनीषा को नए ढंग से सोचने की दृष्टि

दी है। इस दृष्टि का महत्त्व और उपयोगिता इसी से प्रकट होती है कि आज घूम-फिरकर संसार फिर उसी में कल्याण देखने लगा है।

सत्य और अहिंसा पर उनको बड़ी दृढ़ आस्था थी। कभी-कभी उन्हें केवल जैनमत के उस रूप को, जो आज जीवित है, प्रभावित और प्रेरित करनेवाला मानकर उनकी देन को सीमित कर दिया जाता है। भगवान् महावीर इस देश के उन गिने-चुने महात्माओं में से हैं, जिन्होंने सारे देश की मनीषा को नया मोड़ दिया है। उनका चरित्र, शील, तप और विवेकपूर्ण विचार, सभी अभिनन्दनीय हैं।

जिन पुनीत-महात्माओं पर भारतवर्ष उचित गर्व कर सकता है, जिनके महान् उपदेश हजारों वर्ष की कालावधि को चीरकर आज भी जीवन-प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं, उनमें भगवान् महावीर अग्रगण्य हैं। उनके पुण्य-स्मरण से हम निश्चितरूप से गौरवान्वित होते हैं। आज से ढाई हजार वर्ष पहले भी इस देश में विभिन्न श्रेणी की मानव-मण्डलियाँ बसती थीं। उनमें कितनी ही विकसित सभ्यता से सम्पन्न थीं। बहुत सी अर्द्धविकसित और अविकसित सभ्यताएँ साथ-साथ जी रही थीं।

आज भी उस अवस्था में बहुत अन्तर नहीं आया है, पर महावीर के काल में विश्वासों और आचारों की विसंगतियाँ बहुत जटिल थीं और उनमें आदिम प्रवृत्तियाँ बहुत अधिक थीं। इस परिस्थिति में सबको उत्तम-लक्ष्य की ओर प्रेरित करने का काम बहुत कठिन है। किसी के आचार और विश्वास को तर्क से गलत साबित कर देना, किसी उत्तम लक्ष्य तक जाने का साधन नहीं हो सकता, क्योंकि उससे अनावश्यक कटुता और क्षोभ पैदा होता है।

हर प्रकार के आचार-विचार का समर्थन करना और भी बुरा होता है, उससे गलत बातों का अनुचित समर्थन होता है और अंततः आस्था और अनास्था का वातावरण उत्पन्न होता है। खण्डन-मण्डन द्वारा दिग्विजयी बनने का प्रयास इस देश में कम प्रचलित नहीं था, परन्तु इससे कोई विशेष लाभ कभी नहीं हुआ। महावीर ने स्याद्वाद की बात कहकर वैचारिक अहिंसा की बात कही। मेरी दृष्टि में महावीर से बड़ा मानवता का शुभचिंतक और कोई नहीं हो सकता। इसलिए कि वे सबको जीने का संदेश देते हैं और जीवन का अधिकार देते हैं।

दिन पहाड़ से

मनोज जैन 'मधुर'

चुप्पी ओढ़े
रात खड़ी है
सन्नाटे दिन बुनता
हुआ यंत्रवत्
यहाँ आदमी
नहीं किसी की सुनता
सबके पास
समय का टोटा
किससे अपने
सुख-दुख बाँटें?
दिन पहाड़ से
कैसे काटें?

बात बात में
टकराहट है
कभी नहीं दिल मिलते
ताले जड़े हुए
होंठों पर
हाँ ना में सिर हिलते
पीढी गत इस
अंतराल की

खाई को हम
कैसे पाटें?
दिन पहाड़ से
कैसे काटें?

पीर बदलते
हाल देखकर
पढने लगी पहाड़े
तोड़ रहा दम
ढाई आखर
उगने लगे अखाड़े
मन में उगे
कुहासों को हम
इन बातों से
कैसे छांटें?
दिन पहाड़ से
कैसे काटें?

सी. एस. 18, इन्दिरा कॉलोनी
बाग उमराव दूल्हा, भोपाल-10

ख्यातिवाद : प्रमेयकमलमार्तण्ड के प्रकाश में

डॉ. वीरसागर जैन

ख्यातिवाद प्रायः सभी भारतीय दर्शनों का एक प्रमुख विषय है, परन्तु जैन-ग्रन्थों में इसका विस्तृत विवेचन मात्र प्रभाचन्द्राचार्य के 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' एवं 'न्याय-कुमुदचन्द्र' में ही देखने को मिलता है। यद्यपि ज्ञानमीमांसा हेतु इस विषय को समझना भी बहुत आवश्यक है, परन्तु वर्तमान में अनेक लोग इस विषय को कठिन प्रतीत होने के कारण छोड़ देते हैं। यहाँ तक कि प्रमेयकमलमार्तण्ड, जो विभिन्न विश्वविद्यालयों में निर्धारित पाठ्यग्रंथ है, उसके छात्र और अध्यापक भी इस विषय की कठिन होने के कारण उपेक्षा करते देखे जाते हैं। अतः यहाँ प्रस्तुत आलेख द्वारा इस विषय को सरलतापूर्वक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आलेख का मुख्य आधार 'प्रमेयकमल-मार्तण्ड' को ही बनाया गया है। आशा है विभिन्न विश्वविद्यालय के छात्रों को भी इससे लाभ होगा।

कहा जा चुका है कि ख्यातिवाद ज्ञानमीमांसा से सम्बन्धित विषय है। ज्ञान दो प्रकार का है- सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। इनमें से ख्यातिवाद का सम्बन्ध मिथ्याज्ञान से है। मिथ्याज्ञान भी तीन प्रकार का है- संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय। इनमें से भी ख्यातिवाद का सम्बन्ध मात्र विपर्ययज्ञान से है। विपरीत एक कोटि का निश्चायक विपर्ययज्ञान कहलाता है। जैसे रस्सी में सर्प का अथवा सीप में चाँदी का ज्ञान होना विपर्ययज्ञान है। ख्याति का अर्थ होता है- प्रसिद्धि। ख्यातिवाद का मूलभूत विचारणीय विषय यही है कि इस विपर्ययज्ञान में किसकी प्रसिद्धि होती है? सत् की, असत् की, दोनों की अथवा किसी की नहीं? बस, इसी प्रश्न का उत्तर विभिन्न दार्शनिकों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से पृथक्-पृथक् दिया है। फलस्वरूप इस विषय में अनेक बाद निर्मित हो गये हैं। यथा- अख्यातिवाद, असत्ख्यातिवाद, प्रसिद्धार्थख्याति-वाद, आत्मख्यातिवाद, अनि-र्वचनीयार्थख्यातिवाद, विवेका-ख्यातिवाद या स्मृतिप्रमोषवाद और विपरीतार्थख्यातिवाद। 'ख्यातिवाद' के प्रकरण में आचार्य प्रभाचन्द्र ने इस सभी मतों की गम्भीर समीक्षा प्रस्तुत की है। यथा-

1. अख्यातिवाद

चार्वाक कहते हैं कि विपर्यय ज्ञान अख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें किसी की भी ख्याति (प्रसिद्धि) नहीं होती। उनके अनुसार विपर्ययज्ञान निरावलम्बन होता है, उसका कोई आलम्बन नहीं होता। अर्थात् जब हमें

सीप में चाँदी अथवा मरीचिका में जल का ज्ञान होता है, तब उस ज्ञान का विषय न तो सीप होती है और न ही चाँदी, अथवा न मरीचिका होती है और न ही जल। अतः विपर्ययज्ञान अख्यातिरूप होता है।

परन्तु चार्वाक का ऐसा मानना समीचीन नहीं है, क्योंकि यदि विपर्ययज्ञान में किसी भी पदार्थ की ख्याति नहीं होती, तो उसका 'यह चाँदी है' अथवा 'यह मरीचिका है' अथवा 'यह रस्सी है', इत्यादि रूप से विशेष कथन सम्भव नहीं होता, जो होता ही है। तथा विपर्ययज्ञान निरावलम्बन नहीं है, क्योंकि उसमें प्रतिभासित होने वाला पदार्थ उसका आलम्बन होता है। जैसे- जब सीप में चाँदी का विपर्ययज्ञान हो, तब उसका आलम्बन चाँदी है और वहाँ उस चाँदी की स्पष्टतया ख्याति हो रही है।

अतः विपर्ययज्ञान को अख्यातिरूप मानना तर्कसंगत नहीं है।

2. असत्ख्यातिवाद

सौत्रान्तिक और माध्यमिक (बौद्ध दार्शनिक) कहते हैं कि विपर्ययज्ञान असत्ख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें असत्-अविद्यमान अर्थ की ख्याति (प्रसिद्धि) होती है। जैसे- सीप में चाँदी का ज्ञान हुआ, वहाँ चाँदी स्पष्ट ही असत् अर्थ है, अविद्यमान अर्थ है और उस असत् या अविद्यमान अर्थ की ख्याति कराने वाला होने से विपर्ययज्ञान असत्ख्यातिरूप है।

परन्तु उनका यह कथन भी समीचीन नहीं है, क्योंकि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित होनेवाला अर्थ सर्वथा असत् नहीं होता। यदि सर्वथा असत् अर्थ का भी प्रतिभास होता हो, तो आकाशपुष्प आदि का भी हो, जो कथमपि नहीं होता। तथा यदि देखा जाय तो यह कथन ही कि 'असत् की ख्याति होती है' पूर्वापरविरोधयुक्त। असत् भी है और उसकी ख्याति भी होती है- यह कैसी विरुद्ध बात?

अतः विपर्ययज्ञान को असत्ख्यातिरूप मानना भी युक्तिसंगत नहीं है।

3. प्रसिद्धार्थख्यातिवाद

सांख्य कहते हैं कि विपर्ययज्ञान प्रसिद्धार्थख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें प्रतिभासित अर्थ सर्वथा प्रसिद्ध (सत् या विद्यमान) होता है। जैसे- सीप में चाँदी का ज्ञान होने पर वहाँ वस्तुतः ही चाँदी विद्यमान होती है।

यद्यपि उत्तर काल में वहाँ चाँदीरूप अर्थ उपलब्ध नहीं होता है, तथापि जिस समय उसका प्रतिभास होता है उस समय तो वह सत् (विद्यमान) ही रहता है।

परन्तु सांख्यों का उक्त कथन भी समीचीन नहीं है, मिथ्या ही है, क्योंकि यदि इस प्रकार से सभी ज्ञानों को प्रसिद्ध अर्थ का ग्राहक माना जाय तो फिर कौन ज्ञान भ्रान्त कहलाएगा? सब ज्ञान अभ्रान्त ही कहलाएँगे। तथा इस प्रकार से कौन ज्ञान भ्रान्त और कौन ज्ञान अभ्रान्त-इसकी कोई व्यवस्था ही नहीं बन सकेगी। तथा यदि पूर्वकाल में अर्थ सत् था और उत्तर काल में उसका अभाव हो गया तो वह कैसे हुआ? यह स्पष्ट करना चाहिए, जो नहीं किया जा सकता। तथा यदि प्रतिभासित जलादि अर्थ सत् होते हैं और उत्तर काल में उनका अभाव हो जाता है, तो भूमि में आर्द्रता आदि उनके चिह्न तो अवश्य उपलब्ध होने चाहिए थे, क्योंकि जलादि पदार्थों का तत्काल निरन्वय विनाश नहीं देखा जाता।

अतः विपर्ययज्ञान को प्रसिद्धार्थख्याति रूप मानना भी ठीक नहीं है।

4. आत्मख्यातिवाद

विज्ञानाद्वैतवादी या योगाचार (बौद्ध) कहते हैं, कि विपर्ययज्ञान आत्मख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें जिस अर्थ का प्रतिभास होता है वह कोई अन्य नहीं, अपितु उस ज्ञान का अपना ही आकार है, परन्तु अनादिकालीन अविद्या के कारण बाह्य अर्थ जैसा प्रतीत होता है।

परन्तु विज्ञानाद्वैतवादी का उक्त कथन भी समीचीन नहीं है, क्योंकि यदि इस प्रकार से सब ज्ञानों को आत्मख्याति रूप ही माना जाएगा, तो कोई भी ज्ञान भ्रान्त सिद्ध नहीं होगा, सब ज्ञान अभ्रान्त ही सिद्ध होंगे तथा यदि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित चाँदी आदि पदार्थ आत्मरूप (ज्ञानरूप) ही हैं, तो उनकी प्रतीति सुखादि की भाँति अन्तरंग अर्थ रूप से ही होनी चाहिए, बाह्य अर्थ रूप से नहीं होनी चाहिए, जबकि स्पष्ट ही उनकी प्रतीति बाह्य अर्थ रूप से होती है। वस्तुतः आत्मख्यातिवाद तभी समीचीन सिद्ध हो सकता है, जब पहले विज्ञानाद्वैतवाद सिद्ध हो जो कथमपि नहीं होता।

अतः विपर्यय ज्ञान को आत्मख्याति रूप मानना भी न्यायसंगत नहीं है।

5. अनिर्वचनीयार्थख्यातिवाद

ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि विपर्ययज्ञान अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें प्रतिभासित अर्थ

को सत् भी नहीं कहा जा सकता, असत् भी नहीं कहा जा सकता और उभय भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इन तीनों ही पक्षों में दोष प्राप्त होते हैं। यदि सत् माना जाय तो कोई भी ज्ञान भ्रान्त सिद्ध नहीं होगा, सभी अभ्रान्त ही सिद्ध होंगे, यदि असत् माना जाए, तो आकाशपुष्प आदि भी ज्ञान का विषय होना चाहिए, जो कभी नहीं होता, और यदि उभयरूप माना जाय, तो उक्त दोनों ही दोष उपस्थित होंगे। अतः विपर्ययज्ञान को अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप मानना चाहिए।

परन्तु ब्रह्माद्वैतवादियों का उक्त कथन भी समीचीन नहीं है, क्योंकि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित अर्थ कथमपि अनिर्वचनीय सिद्ध नहीं होता। यदि वह वास्तव में अनिर्वचनीय होता तो 'यह चाँदी है' अथवा 'यह रस्सी है' इत्यादि रूप से कथन कैसे होता है? इससे सिद्ध होता है कि विपर्ययज्ञान में प्रतिभासित अर्थ अनिर्वचनीय नहीं है। दरअसल, विपर्ययज्ञान को अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप मानने के पीछे ब्रह्माद्वैतवादियों की भावना अनिर्वचनीय ब्रह्माद्वैत के प्रतिपादन व समर्थन की है, परन्तु वह ब्रह्माद्वैत किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, जो एक पृथक् विषय है और स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

इस प्रकार विपर्ययज्ञान को अनिर्वचनीयार्थख्यातिरूप मानना भी युक्तिसंगत नहीं है।

6. विवेकाख्यातिवाद या स्मृतिप्रमोषवाद

प्राभाकर (मीमांसक) कहते हैं कि विपर्ययज्ञान विवेकाख्याति या स्मृतिप्रमोष रूप होता है, क्योंकि उसमें दो ज्ञानों में विवेक (भेद) की अख्याति या पूर्वदृष्ट अर्थ की स्मृति का प्रमोष (चोरी) देखा जाता है। उनके अनुसार विपर्ययज्ञान में वस्तुतः दो ज्ञान होते हैं। एक ज्ञान तो सामने स्थित अर्थ का प्रतिभास रूप होता है और दूसरा पूर्वदृष्ट पदार्थ का सादृश्यादि के कारण स्मृतिरूप होता है। जैसे जब हमें सीप में यह चाँदी है (इदम् रजतम्), ऐसा ज्ञान होता है, तब वहाँ वास्तव में एक ज्ञान नहीं होता है, अपितु दो ज्ञान होते हैं। एक तो 'यह (इदम्)' पद से प्रकट होने वाला प्रत्यक्षज्ञान और दूसरा 'चाँदी (रजतम्)' पद से प्रकट होने वाला ज्ञान, जो स्मरण रूप होता है। वहाँ ज्ञाता पुरुष प्रत्यक्ष और स्मृति, इन दो ज्ञानों में भेद नहीं जान पाता, अतः यह विवेकाख्यातिरूप है। अथवा सामने स्थित अर्थ के लिए स्मृति करते हुये भी उसे स्मृति नहीं कहता, अतः स्मृतिप्रमोष है। विपर्ययज्ञान

ऐसा विवेकाख्याति या स्मृतिप्रमोष रूप ही होता है।

परन्तु प्राभाकरों का उक्त मत भी समीचीन नहीं है, क्योंकि विपर्ययज्ञान में प्रत्यक्ष और स्मरण ये दो ज्ञान नहीं होते, अपितु एक ही ज्ञान होता है— विपरीत अर्थ को जानने रूप। तथा जिसे वे सादृश्यादि के निमित्त से हुआ स्मृतिप्रमोष कह रहे हैं वह वस्तुतः विपरीतार्थख्याति ही है।

7. विपरीतार्थख्यातिवाद

जैन और नैयायिक-वैशेषिक कहते हैं कि विपर्ययज्ञान विपरीतार्थख्यातिरूप होता है, क्योंकि उसमें विपरीत अर्थ की ख्याति होती है। अर्थात् सादृश्यादि कुछ कारणों से सीप में उसके विपरीत अर्थ चाँदी का ज्ञान हो जाता है अथवा मरीचिका में उसके विपरीत जल का ज्ञान हो जाता है। अतः विपर्ययज्ञान को विपरीतार्थख्याति रूप ही मानना चाहिए।

जैनों और नैयायिक-वैशेषिकों का उक्त कथन न्यायसंगत है। विपर्ययज्ञान को विपरीतार्थख्यातिरूप मानने में कोई बाधा नहीं है।

शंका— सीप में चाँदी के विपर्ययज्ञान का आलंबन

क्या है? सीप या चाँदी? यदि सीप है, तो उसे सत्ख्यातिरूप कहिए और यदि चाँदी है, तो उसे असत्ख्यातिरूप कहिये। यह विपरीतार्थख्याति क्या होती है?

समाधान— सीप में चाँदी के विपर्ययज्ञान का आलंबन चाँदी ही है, सीप नहीं क्योंकि यदि उसका आलंबन सीप होता, तो वह विपर्ययज्ञान नहीं कहलाता। परन्तु उसका आलंबन चाँदी होते हुये भी उसे असत्ख्यातिरूप नहीं माना जा सकता, क्योंकि यदि असत् अर्थ की भी ख्याति होती हो, तो आकाशपुष्पादि की भी होनी चाहिए। अतः ऐसी स्थिति में यही मानना उचित है कि विपर्ययज्ञान में विपरीत अर्थ (सीप से विपरीत चाँदी है, रस्सी से विपरीत सर्प है, इत्यादि) की ख्याति होती है। विपर्ययज्ञान का नाम विपरीतार्थख्याति रूप होने के कारण ही विपर्ययज्ञान है।

अध्यक्ष जैनदर्शन विभाग

श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
(मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली- 110 016

पार्श्वनाथ विद्यापीठ निबन्ध प्रतियोगिता 2007-08

उद्देश्य— जैन समाज लम्बे समय से यह अनुभव कर रहा है कि लोगों को जैनधर्म, दर्शन एवं संस्कृति की यथार्थ जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि जैनदर्शन में विश्वदर्शन बनने की क्षमता है। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए 'पार्श्वनाथ विद्यापीठ' नवयुवकों के बौद्धिक विकास एवं जैनधर्म, दर्शन के प्रति उनकी जागरूकता को बनाये रखने के लिए प्रतिवर्ष एक निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन कर रहा है, जिससे कि लोगों में पठन-पाठन एवं शोध के प्रति रुचि पैदा हो एवं साथ ही विचारों का आदान-प्रदान हो सके। इस कड़ी में यह पाँचवीं निबन्ध प्रतियोगिता है।

विषय : 'अनेकान्तवाद : सिद्धान्त और व्यवहार'

निबन्ध के साथ प्रतिभागी की पासपोर्ट साइज फोटो, पूरे पते सहित अपनी शैक्षिक योग्यता का विवरण एवं हाई स्कूल सर्टिफिकेट की फोटो प्रति (Xerox copy) भेजना अनिवार्य है।

निबन्ध भेजने का पता

संयोजक— निबन्ध प्रतियोगिता-2007-08, पार्श्वनाथ विद्यापीठ आई. टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी- 221005

(उ.प्र.)

आयुवर्ग के आधार पर निबन्ध के लिए निर्धारित पृष्ठ संख्या—

18 वर्ष तक— डबल स्पेस में फुलस्केप साइज में टंकित (typed) पूरे चार पेज।

18 वर्ष के ऊपर— डबल स्पेस में फुलस्केप साइज में टंकित (typed) पूरे आठ पेज।

पुरस्कार— निर्णायक मण्डल द्वारा चयनित प्रतियोगी को निम्नानुसार पुरस्कार देय होगा—

18 वर्ष तक के प्रतियोगी के लिये— प्रथम पुरस्कार-2500 रु., द्वितीय पुरस्कार-1500 रु., तृतीय पुरस्कार-1000 रु.

18 वर्ष के ऊपर के प्रतियोगी के लिये— प्रथम पुरस्कार-2500 रु., द्वितीय पुरस्कार-1500 रु., तृतीय पुरस्कार-1000 रु.

प्रतियोगिता की भाषा— निबन्ध हिन्दी या अँग्रेजी दोनों भाषाओं में हो सकते हैं।

अन्तिम तिथि— इस निबन्ध प्रतियोगिता के लिये आलेख 28 फरवरी, 2008 तक भेजे जा सकते हैं।

डॉ. श्री प्रकाश पाण्डेय
निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-5 (उ. प्र.)

जरा सोचिए गाय के बारे में

श्रीमती मेनका गाँधी

दीपावली के दूसरे दिन गाय आदि पशुधन की पूजा की जाती है। रंग बिरंगे छापों और फूल से इन्हें सजाया जाता है। पर्यावरणविद् मेनका गाँधी ने गाय के महत्त्व को समझते हुए अंतरमन से यह महसूस किया है। उन्होंने इस आलेख में विश्व में इस उपयोगी पशु की क्या स्थिति है, इस पर गहरा चिंतन-मनन करते हुए ऐसे तथ्य दिए हैं, जो हमें सोचने के लिए विवश करते हैं

कुछ वर्ष पूर्व एक अँगरेज महिला, जिसे पशुओं के हावभाव समझने का वरदान था, दिल्ली में मेरे आश्रय में आ गई थी। एक गाय के पास से जाते हुए वह मेरी ओर मुड़ी और कहा कि 'यह गाय कहती है कि उसके सिर में अभी भी दर्द होता है।' उस महिला को पहले से यह नहीं पता था कि उस गाय का कोई एक्सीडेंट हुआ है।

अगली बार जब भी कभी आप मांस को खाएँ अथवा चमड़े के नए जूतों को पहनें, तो याद रखें कि गाय भी अपने दर्द के बारे में बता सकती है। हम इतने होशियार नहीं हैं कि उनकी बोली को समझ सकें। बिस्टॉल में पशुपालन के प्रोफेसर जॉन वेबस्टर ने एनिमल वेल्फेयर-लिम्पिंग टुवार्ड्स ईडन विषय पर हाल ही में एक पुस्तक प्रकाशित की है। वे कहते हैं कि 'लोगों ने यह मान लिया है कि चूँकि पशुओं का मस्तिष्क छोटा होता है, इसलिए उन्हें मानव से कम पीड़ा होती है। यह एक दयनीय तर्क है।'

कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में पशु कल्याण के प्रोफेसर डोनाल्ड ब्रूम यह बताते हैं कि किस प्रकार गाय बौद्धिक चुनौतियों को हल करने के लिए उत्साहित रहती है। एक अध्ययन में अनुसंधानकर्ताओं ने गाय को करने के लिए एक क्रिया दी, जिसमें उन्हें यह पता लगाना था कि दरवाजा खोलकर भोजन कैसे प्राप्त किया जाए। उनके मस्तिष्क की तरंगों को मापने के लिए एक 'इलेक्ट्रोएनसेफलो ग्राफ' का उपयोग किया गया था। उनके मस्तिष्क की तरंगों ने दर्शाया कि हल का पता लगाने पर उनके हृदय की धड़कन बढ़ गई थी और कुछ तो हवा में भी उछलने लगी थीं।

अनुसंधानों ने दर्शाया है कि गाय स्पष्टतः कारण एवं प्रभाव संबंधों की जानती है। पहचानने की विकसित क्षमताओं का एक स्पष्ट लक्षण है, उदाहरण के लिए गाय प्यास लगने पर किसी पानी के फव्वारे को चलाने के लिए लीवर को चलाना सीख सकती है अथवा भूख लगने पर

अनाज प्राप्त करने के लिए किसी बटन को दबाकर अनाज निकाल सकती है। मानव की तरह ही गाय शीघ्रता से उन चीजों से दूर रहना सीख लेती है, जिससे उन्हें दर्द होता है, जैसे कि इलेक्ट्रिक बाड़ तथा क्रूर मनुष्य।

गायों में एक-दूसरे से सीखने की क्षमता भी होती है, जो कि उनकी बुद्धिमत्ता का एक और सूचक है, जिसकी तुलना कुत्ते से की जा सकती है। ह्यूमन सोसायटी ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स के अनुसार यदि किसी गाय के झुंड में एक गाय को किसी इलेक्ट्रॉनिक बाड़ से झटका लगता है, तो शेष भी सचेत हो जाती हैं और उससे बचने लगती हैं। उनकी शक्तियाँ काफी सटीक होती हैं, विशेषकर उनकी सूँघने की शक्ति। कुत्ते के समान ही उनकी पहली मंशा आप के पास आकर आपको सूँघने की होती है। उनकी समय की समझ अद्भुत होती है। उन्हें पता होता है कि कब उनका दूध निकाला जाएगा या कब उन्हें भोजन दिया जाएगा।

गाय सीखे गए सबक को भूलती नहीं है। उनकी याददाश्त काफी अच्छी होती है। उन्हें अपने घर का रास्ता याद रहता है और वे अपने पसंदीदा स्थल पर वापस जाने का रास्ता ढूँढ सकती हैं (इतना तो मैं भी नहीं कर पाती)। उन्हें वस्तुएँ कहाँ रखी हुई हैं, निकलने के रास्ते, पानी पीने के स्थान, आश्रय तथा अपने नवजात बछड़े की स्थिति के बारे में याद रहता है। अनुसंधानकर्ता यह भी बताते हैं कि गाय कई माह बाद भी किसी घास के मैदान में चरने के अच्छे स्थान को याद रख सकती है। गायों द्वारा बोली में बेच दिए जाने के पश्चात् अपने मार्ग को याद रखने की क्षमताओं के कारण वापस घर लौट आने के किस्से आम हैं। कुछ गाय तो उन्हें भी कभी नहीं भूलती, जिन्होंने उसे चोट पहुँचाई होती है और उन्हें उस प्रजाति के अन्य सदस्यों के साथ भी द्वेष रखते हुए देखा गया है। रॉसामुंड यंग एक बूढ़ी गाय तथा उसकी पुत्री के मध्य कलह का ब्योरा देते हैं कि बूढ़ी गाएँ अक्सर अपनी बेटियों

की पालन-पोषण के कार्यों में सहायता करती हैं, परंतु ओलिविया नामक एक गाय इसमें बिलकुल भी सहायता नहीं चाहती थी। उसने पालन-पोषण में सहायता करने के अपनी माँ के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अंततः अप्रसन्न होकर उसकी माँ चरने के लिए अपने अन्य साथियों के साथ एक दूसरे खेत में चली गई और उसने फिर कभी अपनी बेटी से 'बात' नहीं की। दयापूर्ण व्यवहार किए जाने पर गाय वफादार साथी सिद्ध हो सकती है। स्टेफनी लैलेंड अपनी पुस्तक 'पीसफुल किंगडम-रैंडम एक्ट्स ऑफ काइंडनेस बाय एनिमल्स' में लिखती हैं कि जब पादरी ओएफ राबर्टसन की आँखों की ज्योति जाने लगी तो उनकी गाय मैरी उनकी आँखों की ज्योति बन गई। मैरी उनके साथ-साथ चलते हुए बाधाओं से उनकी रक्षा करती थी। राबर्टसन अपने शेष जीवन में जहाँ कहीं भी गए, मैरी उनके साथ-साथ गई।

अपने परिवार, मित्रों अथवा मानव-सखाओं से बिछड़ने पर गाय को उनके खो देने की पीड़ा महसूस होती है। अनुसंधानकर्ता बताते हैं कि गाय थोड़े समय की जुदाई में भी दुखी दिखाई देती है। गाय तथा उसके बछड़े का संबंध खासतौर से मजबूत होता है और ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, जब गाय से उसके बछड़े को छीनकर कसाइयों को बेच दिए जाने के पश्चात् उसे पागलों की तरह चिल्लाते हुए देखा गया है। वे काफी दिनों तक उस बाड़े के बाहर, जहाँ उन्होंने अपने बछड़े को अंतिम बार देखा था, दुख में खड़ी रहती हैं और चिल्लाती हैं तथा जबर्दस्ती हटाए जाने पर ही वहाँ से हटती हैं। कुछ सप्ताह पश्चात् वे फिर उसी स्थान पर यह देखने के लिए वापस आएँगी कि क्या उनका बछड़ा वापस आ गया है।

अन्य सभी पशुओं के समान ही गाय को भी अपना

जीवन मूल्यवान् लगता है और वे मरना नहीं चाहती हैं। ऐसे किस्से बहुतायत में हैं, जहाँ गाय ने अपने जीवन की रक्षा करने के लिए असाधारण लड़ाइयाँ लड़ी थीं। सूजी नाम की एक गाय को जब एक भार-वाहक में चढ़ाया जाना था, तो वह पीछे की ओर मुड़ी, लकड़ियों के ढेर पर भागी और फिर उसने नदी में छलांग लगा दी। यद्यपि वह गर्भवती थी, फिर भी वह तैरकर नदी पार करने में सफल रही और कई दिनों तक पकड़ में नहीं आई। उसे पीटा (पीईटीए) द्वारा बचाकर फार्मवाले पशुओं की एक सेंचुरी में भेज दिया गया था।

मांस खाने का अर्थ है ऐसे पशुओं को खाना जो मरना नहीं चाहते हैं। अमेरिका में प्रत्येक वर्ष 40 मिलियन से अधिक गायों की, मांस तथा डेयरी उद्योग द्वारा हत्या की जाती है। जब वे कम उम्र की ही होती हैं तब ही उन्हें गर्म सलाखों में जलाया जाता है, उनके अंडकोशों को निकाल दिया जाता है और उनके सींगों को काटा अथवा जलाया जाता है, वह भी बिना पेनकिलर के। थोड़ा बड़ा होने के पश्चात् उन्हें बहुत बड़े मिट्टीवाले भोजन करने के स्थानों में वध किए जाने हेतु मोटा होने के लिए भेजा जाता है। डेयरी में रहने वाली लाखों गायें अपना अधिकांश जीवन या तो बड़े-बड़े शेड में अथवा उनका मल लगे हुए मिट्टी के ढेरों में व्यतीत करती हैं, जहाँ पर रोग काफी फैले होते हैं। दूध के लिए पाली जानेवाली गायों को बार-बार गर्भवती किया जाता है और उनके बछड़े को उनसे लेकर बछड़े के मांसवाले फार्मों अथवा अन्य डेयरी फार्मों को भेजा जाता है। जब उनका थका हुआ शरीर और दूध नहीं दे सकता है, तो उन्हें वधगृह में भेज दिया जाता है।

'नई दुनिया' इन्दौर, 10 नवम्बर 2007 से साभार

समता

पैर में तकलीफ बढ़ती ही जा रही थी आचार्य महाराज कक्ष में आये और मुझसे पूँछने लगे क्यों महाराज कैसी है तकलीफ। मैंने कहा बढ़ती ही जा रही है आचार्य श्री बोले इस रोग में कोई औषधि तो काम करती ही नहीं है। समता ही रखनी होगी। मूलाचार में साधु को सबसे बड़ी औषधि बताई है बताओ वह क्या है? मैंने कहा जी आचार्य श्री समता। खुश होकर आचार्य श्री बोले बहुत अच्छा ऐसी ही समता बनाए रखना। मैंने कहा आपका आशीर्वाद रहा तो सब सहन हो जावेगा आप आ जाते हैं तो साहस बढ़ जाता है आचार्य श्री कहते हैं भैया और मैं क्या कर सकता हूँ आशीर्वाद ही दे सकता हूँ। मैंने कहा आपके आशीर्वाद से ही मुझे सब कुछ मिल जाता।

मुनि श्री कुंथुसागर-कृत 'संस्मरण' से साभार

बिस्किट और दिग्भ्रमित ग्राहक

भ. १००८ श्री आदिनाथ युवक संगठन, फलटन (जि.-सातारा) महाराष्ट्र की ओर से
भ. महावीर जयंति के शुभ अवसर पर प्रकाशित पत्रक

सब प्रकार के पॅकेज्ड फूड के लिए सरकार ने कानून बनाये हैं। उस कानून के तहत सभी खाद्यपदार्थों पर शाकाहारी या मांसाहारी लिखना अनिवार्य है। परंतु दुर्भाग्य की बात है कि इस कानून पर अमल करनेवाले सरकारी अधिकारी रिश्वत के चंगुल में फँसते हैं और इन पॅकेज्ड फूड के कानून से छुटकारा पाने के कई अवैध मार्ग अपनाये जाते हैं। मछली, अण्डे या मांस जिन पदार्थों में मिलाया जाता हो, उन पर लाल निशान होना आवश्यक है और जिन पदार्थों में शाकाहारी पदार्थ मिलाये गये हैं, उन पर हरा निशान आवश्यक है। यह हरा निशान ही अब ग्राहकों को दिग्भ्रमित कराने के लिए और फँसाने के लिए उपयोग में लाया जा रहा है। ऐसे कई केसेस हैं जिनमें मांसाहारी पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं और वे विटामिन के नाम पर चला दिए जाते हैं। ग्राहकों को कभी नहीं बताया जाता कि विटामिन 'ए' यह मछलीतेल से किया गया उत्पादन है। ऐसे अनेक पदार्थों पर हरा निशान भी नहीं लगाया जाता। मिठाई में भी ये ही मांसाहारी पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं। यह जानकर कई शाकाहारी सज्जनों को चक्कर आ जायेगा। (कुछ मंदिरों में महावीरजयंति के अवसर पर बीमार लोगों को बिस्किट बाँटे जाते हैं। क्या यह उचित है?)

बिस्किट : कितने शाकाहारी कितने मांसाहारी?

कुछ महिनों पहले २४ लोकसभा सदस्यों ने केन्द्रीय अन्न प्रक्रिया मंत्रालय से बेकरी माल और बिस्किट उत्पादन कंपनियों की जाँच करने की माँग की थी। उनकी शिकायत के अनुसार इन खासदारों ने आरोप लगाया है कि बेकरी माल और बिस्किट्स में प्राणियों की चरबी (Animal Fat) उपयोग में लायी जाती है। यह चरबी सुअर, गाय, कुत्ता और बंदरों को कत्ल कर बिस्किट उत्पादनों में उपयोग में लायी जाती है। इस गम्भीर शिकायत के तहत देशभर में ब्रिटानिया मिल्क विक्कीज, मेरी गोल्ड, टायगर, गुड डे, पार्ले जी, मोनॅको, हाईड और सिक् इन कंपनियों की जाँच, केंद्र सरकार ने आरंभ कर दी है। इससे कुछ गम्भीर बातें ग्राहकों के सामने आ रही हैं।

बिस्किट कैसे बनते हैं?

18 दिसम्बर 2007 जिनभाषित

आटा, पानी में कई घटक मिलाकर बिस्किट बनाये जाते हैं। इनमें रंग, सुगंधित द्रव्य प्रिजरर्वेटिवज, एंटी-ऑक्सीडेंट, थिकनरर्स, स्वीटनर्स, स्टेबिलाजर्स, एसिडिटी, रेग्युलेटर्स, आदि अनेक एकटीवेटिब्ज, प्राणीजन्य पदार्थों से बनाये जाते हैं। उदाहरण— अन्नपदार्थ और पेयपदार्थों में लाल रंग यह कोचिनियल बीटल्स (Cochineal Beetles) से बनाया जाता है। मेक्सिकन कीड़ों से यह रंग बनता है। इसका मतलब यह है कि यह रंग वनस्पतिजन्य नहीं है।

इ-नंबर्स— बिस्किट के पैकेट पर देखिये, उसपर (E-Numbers) लिखे होते हैं। योरोपीय देशों में 'ई-नम्बर' की पद्धति आवश्यक की है। 'पार्ले जी' का नया 300 ग्राम का पैक लीजिए। उसको ध्यान से पढ़िए, उसमें इम्युलसि-फायर्स 322, या 471 और 481 नम्बर छपा हुआ है। कुछ माल पर कॅल्शियम सॉल्ट A 233 S > O कंडिशनर 223 और इस प्रकार के ई-नम्बर अत्यंत बारीक अक्षरों में छपे हुए होते हैं, परंतु पढ़े जा सकते हैं।

सच्ची रहस्यकथा तो यहीं से आरंभ होती है। देशभर के बिस्किट-उत्पादक उपर्युक्त पदार्थ विदेशों से मँगाते हैं। उसके लिए केंद्रशासन से परमिट आवश्यक होता है। सब मांसाहारी अंतर्घटक हैं। उसके लिए मांसाहारी आयात परमिट (अनुज्ञापत्र) बिस्किट-उत्पादक कंपनियों सरकार से प्राप्त करती हैं। परंतु देश में उन घटकों को शाकाहार के नाम पर बेचकर ग्राहकों को ठगा जाता है। अगर शाकाहारी माल मँगाना होता, तो उनके लिए मांसाहारी परमिट की क्या जरूरत थी? यह सादा, सरल प्रश्न है। केन्द्र सरकार 'अन्न प्रक्रिया मंत्रालय' को भी इसके बारे में 'न खेद न दुःख' शाकाहारी जनता तो इसकी बली चढ़ जाती है, विशेषतः अहिंसाधर्मीय जैन, ब्राह्मण आदि समाज के साथ तो यह सीधा-सीधा धोखा है। निम्नलिखित नंबर्स उनके लिए नहीं हैं, यह ध्यान में रखा जाए। A-120, 441, 542, 904, 920 के साथ ही ल्यूसीन (Leucine) और (Spermaceti/Sperm) इनके कोई नम्बर नहीं होते। क्ले मछली के सिर का सफेद चरबीयुक्त पदार्थ ही स्पर्मसेटी है।

हिन्दी अनुवाद : सौ. लीलावती जैन

बुन्देलखण्ड का जैन कला-वैभव

श्री राकेश दत्त त्रिवेदी

भारतीय इतिहास में बुन्देलखण्डक्षेत्र का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस क्षेत्र का बुन्देलखण्ड नाम लगभग 14 वीं शताब्दी में प्रचलित हुआ। इसके बहुत पहले सातवीं-छठीं शताब्दी ई.पू. में यह भूभाग चेदि एवं वत्स नामक जनपदों में आता था जिसका उल्लेख बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में मिलता है। इसके पश्चात् यह क्षेत्र जेजाकमुक्ति नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसमें आधुनिक बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग सम्मिलित था। कला के क्षेत्र में प्राचीनकाल से इस भूभाग का बड़ा भारी योगदान रहा है। ई.पू. दूसरी शताब्दी में भरहुत नामक स्थान प्राचीन स्तूप और उससे सम्बन्धित शिल्प कला का केन्द्र था। मध्यप्रदेश के पन्ना जिले के 'नचना' नामक स्थान के समीप जैन तीर्थकारों की गुप्त कालीन (पांचवीं शताब्दी) मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से पीठिका पर पद्मासन में बैठी हुई जिन प्रतिमा अपनी भव्यता और शान्तभाव के लिए दर्शनीय है। इस क्षेत्र में जैन मूर्तियों के मिलने से संकेत मिलता है कि इसके आसपास जैनमंदिर भी रहा होगा जो अब सुरक्षित नहीं है।

दुर्जनपुर गाँव (जिला-विदिशा, मध्यप्रदेश) से प्राप्त तीन तीर्थकर मूर्तियाँ गुप्तकाल में जैन मूर्तिकला के विकास का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। तीनों मूर्तियाँ पद्मासन में ध्यान मुद्रा में आसीन प्रदर्शित की गई हैं, जिनकी पीठिका पर बाहर की ओर उन्मुख सिंहों का प्रदर्शन किया गया है और पीठिका के मध्य में धर्मचक्र निर्मित है। मूर्तियों के वक्ष-स्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इन मूर्तियों का उल्लेख इनकी पीठिका पर अंकित लेख से और भी बढ़ गया है। जिसके अनुसार इनकी स्थापना गुप्त सम्राट महाराजाधिराज रामगुप्त ने करवायी थी। विदिशा के समीप उदयगिरि गुफा नं. 20 में गुप्तराजा कुमारगुप्त प्रथम के काल का एक लेख मिलता है जिसमें तीर्थकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख है और यह भी लिखा है कि इस प्रतिमा के ऊपर सर्पफणों का निर्माण किया गया था। यह प्रतिमा अब उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार आधुनिक बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती और निकटस्थ प्रदेश में गुप्तकाल में जैन मूर्तिकला की सशक्त परम्परा प्रचलित थी। गुप्त सम्राट स्वयं तो परमभागवत थे किन्तु अपनी धार्मिक सहिष्णुता और

उदारता की भावना के अनुसार उन्होंने जैन और बौद्धधर्म तथा मूर्तिकला को भी प्रोत्साहन प्रदान किया। यद्यपि विदिशा के आसपास किसी जैन मंदिर के अवशेष नहीं मिले हैं लेकिन विदिशा के पड़ोसी जिले दमोह में स्थित कुण्डलपुर में जैन मंदिरों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इससे विदित होता है कि इस भूभाग में जैन मंदिर निर्माणकला और प्रतिमा निर्माण प्रचलित था और उनके उपासक इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में रहे होंगे।

कुण्डलपुर में जैन मंदिरों का जो प्राचीन रूप हमारे सामने आता है वह प्रारम्भिक गुप्तकालीन मंदिरों का ही रूप है। इनमें वर्गाकार गर्भगृह और उसके सामने स्तम्भयुक्त मुखमण्डप देखने को मिलता है जो साधारण सी पट्टिकाओं वाले अधिष्ठान पर निर्मित हैं। इसका भित्तिभाग सादा है और छत समतल पत्थर से ढकी है। मुखमण्डप के चौकोर स्तम्भ घटपल्लव से अलंकृत कुंभिका पर बने हैं और उनके ऊपरी भाग गोलाई वाले ब्रेकेटों से सुसज्जित हैं। अपने तल और निर्माण योजना में कुण्डलपुर के प्राचीन जैन मंदिर सांची के मंदिर नं. 17 और उदयगिरि (विदिशा) की गुफा नं.1 से मिलते हैं। यह तथ्य हमको एक सर्वमान्य सत्य का स्मरण दिलाता है कि कला के क्षेत्र में कलाकारों के लिए ब्राम्हण जैन या बौद्ध जैसा कोई भेद नहीं था, भेद था तो केवल मूर्तियों की पहचान या स्वरूप में, लेकिन उन सबका कलात्मक पक्ष एक ही था। कुण्डलपुर के ही बड़े बाबा नामक मंदिर में अनेकों तीर्थकर और यक्षिणी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं जो प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं और यहाँ के विस्तृत मंदिर समूह की स्थिति और कला की परिचायक हैं।

मध्यप्रदेश के सतना जिले में पिथौरा नामक स्थान पर पतैनी देई नाम से प्रसिद्ध जैन मंदिर समतल छतवाले मंदिरों का परवर्ती उदाहरण है जिसका निर्माण 100 ई. के आसपास हुआ होगा। इसके द्वारभाग का अलंकरण विशेष रोचक है। द्वार शाखाओं के निचले भाग पर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ यक्ष द्वारपालों के साथ बनाई गई हैं जिनके ऊपर त्रिशखा पट्टिकाएँ पत्रलता और पुष्पशाखा से उत्कीर्ण हैं। द्वार के सिरदल पर तीन जिन मूर्तियाँ स्तम्भिका युक्त रथिकाओं में पद्मासन में बैठी हैं। सतना

जिले के ही तुलसी संग्रहालय, रामवन में तीर्थकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा सुरक्षित है जिसके पार्श्वभागों में त्रिभंग मुद्रा में इन्द्र और उपेन्द्र प्रदर्शित हैं। सुन्दर गठन और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति से परिपूर्ण मूर्ति गुप्तकाल का परवर्ती उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण लगभग 7वीं शताब्दी की कृति मालूम पड़ती है।

नचना के समीप सिरा पहाड़ी से तीर्थकर आदिनाथ और पार्श्वनाथ की दो प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो नचना में पल्लवित शिल्पकला से सम्बन्धित प्रतीत होती हैं और लगभग 8वीं शताब्दी में निर्मित हुई होगी।

मध्यप्रदेश के जबलपुर क्षेत्र ओर तेवर (प्राचीन त्रिपुरी, जिला-जबलपुर) से कलचुरि राजाओं के काल की अनेकों जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो लगभग 9वीं से 12वीं शताब्दी की हैं। इनमें से जिन धर्मनाथ की मूर्ति नागपुर संग्रहालय में है और उस प्रकार की तीर्थकर आदिनाथ की त्रिपुरी से प्राप्त मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, में सुरक्षित है। त्रिपुरी से उपलब्ध अनेकों तीर्थकर मूर्तियाँ जबलपुर संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। जबलपुर क्षेत्र बुन्देलखण्ड की पूर्वी बाहरी परिधि है जिसने बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग को कलचुरि राजाओं के काल (9वीं से 12वीं शताब्दी) में प्रभावित किया।

देवगढ़ (जिला-ललितपुर, उत्तरप्रदेश) जहाँ गुप्तकालीन दशावतार मंदिर के लिए प्रसिद्ध है वहीं जैन मंदिरों के एक विशाल समूह के लिए भी। इस मंदिर समूह के लगभग 31 जैन मंदिर 9वीं से 12वीं शताब्दी के मध्य पहाड़ी पर निर्मित हुए जो अपने आप में जैन स्थापत्य और शिल्पकाल के अध्ययन का विस्तृत विषय हैं। जैन स्थापत्य ओर चंदेल राजाओं के काल में हुआ। कुछ मंदिरों को छोड़कर अधिकतर मंदिर छोटे आकार के हैं जिनका निर्माण वर्गाकार या आयताकार तल योजना पर किया गया और जिनमें गर्भगृह तथा उसके सामने मुखमण्डप स्थित है। अधिकांशतः ये मंदिर समतल छतवाले हैं, केवल दो मंदिर नं. 12 और नं. 28 शिखर युक्त हैं। यहाँ पर विभिन्न आकार-प्रकार की मूर्तियाँ और मानस्तम्भों के उदाहरण भी बड़ी संख्या में मिलते हैं। इन मंदिरों में से दो मंदिर नं. 12 और नं. 15 अनी स्थापत्य विशेषताओं के कारण विशेष रूप से वर्णनीय हैं।

शान्तिनाथ मंदिर (मंदिर नं. 12) इस मंदिर के सामने स्थित मुख-चतुष्की के एक स्तम्भ पर प्रतीहार वंशीय

भोजदेव (मिहिर भोज) के समय का 862 ई. का एक अभिलेख मिलता है जिसपर उत्कीर्ण है कि स्तम्भ का निर्माण शान्तिनाथ मंदिर के समीप (शान्त्यायतनसन्निह्ये) किया गया। पश्चिमाभिमुख इस मंदिर में गर्भगृह और अन्तराल प्रदक्षिणमपथ से आवेष्टित हैं। इसके सामने अनेक स्तम्भोंवाला मण्डप बाद में निर्मित हुआ। प्रदक्षिणमपथ से बाहर की ओर जाने के लिए मुख्य द्वार के अतिरिक्त तीनों ओर द्वार हैं। मंदिर का अधिष्ठान नीचा और अपेक्षाकृत सादा है किन्तु उसके ऊपर जंघाभाग स्तम्भिका तथा उद्गमों के नीचे जैन यक्षी प्रतिभाओं से सुशोभित है जिनकी पहचान के लिए सुलोचना, सुमालिनी, सुलक्षणा आदि नाम भी लिखे मिलते हैं। जंघा के ऊपर करण्डिका भाग पर तालपत्र, घंटिकामाला, सिंहमाला आदि से विभूषित पट्टिकाएँ हैं जिनके ऊपर शिखर आधारित है- पंचरथ की चौड़ी मध्यलता के दोनों ओर कर्णभाग पर निर्मित चिपटे भूमि आमलक शिखर की ऊँचाई दर्शाते हैं। शिखर के सामने त्रिभुजाकार शुकनसिका के निचले भाग में एक देवकुलिका का द्वार है जिसके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी दो-दो जिन प्रतिमाएँ निर्मित की गई हैं। शुकनसिका के शीर्षभाग पर पदमासन में आसीन एक जिन मूर्ति स्थित है। मंदिर में प्रवेश के लिए मुख्य द्वार प्रदक्षिणा पथ में ले जाता है और दूसरे द्वार से गर्भगृह में प्रवेश मिलता है। गन्धर्वशाखा, मिथुनशाखा और गंगा-जमुना की मूर्तियों से अलंकृत द्वार मुख्य मंदिर से कुछ बाद के हैं जैसा कि उनके शिल्प और उन पर लिखी तिथियों से ज्ञात होता है। द्वार के ऊपर ललाटबिम्ब पर तीन जिन प्रतिमाएँ हैं जिनके दोनों ओर नवग्रह तथा वीणापाणि सरस्वती की मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसके ऊपर सिरदल (उत्तरंग) पर जिन प्रतिमाओं के साथ-साथ जैन धर्म के सोलह मांगलिक प्रतीक भी दर्शाये गये हैं जिनका स्वप्न में दर्शन तीर्थकर की माता ने किया था। गर्भगृह में प्रवेश के लिए अन्तराल भाग में स्थित सीढ़ियों से उतरना पड़ता है क्योंकि उसका तल प्रदक्षिणा पथ से नीचा है। गर्भगृह के अन्दर कुंभिका, पट्टिका आधार है। पिछले भाग में तीर्थकर शान्तिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है जिसके दोनों ओर दो-दो अनुचर बने हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि मंदिर के सामने की चतुष्की के एक स्तम्भ पर शान्तिनाथ के आयतन का उल्लेख है और यह प्रतिमा उसी को प्रमाणित करती है। गर्भगृह में जैन देवी अम्बिका की प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं जिनके बांये

अंक में एक शिशु है और दाहिने हाथ से एक दूसरे शिशु को आम्रछौर प्रदान करती है। ये देवियाँ फलों से झुके आम्रवृक्ष के नीचे खड़ी दर्शायी गई हैं जिसके पीछे एक सिंह बैठा है।

मंदिर नं. 15 शान्तिनाथ मंदिर के निकट स्थित इस मंदिर का तलविन्यास और आयोजन भिन्न प्रकार का है। यह त्रिरथ मंदिर सर्वतोभद्र प्रकार का लगता है जिसके चारों ओर बाहर की ओर निकलते हुए भद्र हैं। अन्दर एक बड़ा मण्डप है जिसके तीन ओर गर्भगृह हैं और सामने मुखमण्डप है। जंघा के बाहरी भद्रभाग पर तीनों और एक एक देवकुलिका बनाई गई है जिनके अन्दर पद्मासन में बैठी तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी तीर्थकरों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित की गई हैं। सामने मुखमण्डप में मंदिर का द्वार अपनी सुन्दर शिल्पकारी के लिए आकर्षक है जिसकी देहरी (उदुम्बर) पर मन्दारक, कमल, किन्नर-मिथुन कीर्तिमुख और आक्रान्त सिंह बने हैं। द्वार-पार्श्व के निचले भागों पर मकर-वाहिनी गंगा और कच्छप-वाहिनी यमुना का चित्रण हुआ है जिनके ऊपर द्वारशाखाएँ पत्रशाखा, रूपशाखा, नागशाखा से सुशोभित हैं। रूपशाखा में पद्मासन पर विराजमान जैन तीर्थकरों का प्रतिरूपण किया गया है तथा द्वार के ऊपर ललाटबिम्ब पर पद्मासन में जिन-प्रतिमा निर्मित हुई है जिसके दोनों ओर उसी प्रकार की आठ और मूर्तियाँ हैं।

स्तम्भयुक्त मण्डप के अन्दर तीन द्वार हैं जिनसे भद्रभाग पर निर्मित गर्भगृहों में प्रवेश मिलता है जिनमें तीर्थकर मूर्तियों स्थापित की गई हैं। इस मंदिर की जीर्णोद्धार बाद में बड़े पैमाने पर किया गया है इसलिए इसके मौलिक रूप, विशेषतया शिखरभाग, के आकार का ज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार देवगढ़ के अन्य जैन मंदिरों का भी जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण इतना अधिक हुआ है कि उनमें से बहुतों का रूप ही बदल गया है। इन दोनों मंदिरों का निर्माण प्रारम्भिक 12वीं शताब्दी में किया गया जैसा कि ऊपर वर्णित भोजकालीन लेख और शिल्प विशेषताओं से विदित होता है। देवगढ़ के मंदिर का नं. 16 और 19 के अवशेष भी अपने शिल्पाकरण और द्वारशाखाओं के निर्माण में इन मंदिरों से मिलते हैं और 9वीं शताब्दी के प्रतीहार कालीन प्रतीत होते हैं। इनके द्वारभाग पर निर्मित गंगा-यमुना की मूर्तियाँ जिनके ऊपर हंसमिथुन, नागशाखा, जिनप्रतिमायुक्त सृपशाखा, पत्रशाखा तथा स्तम्भ शाखा

विशेषरूप से आकर्षक हैं। प्रतीहारों के बाद जेजाबभक्ति के चंदेलों के समय (11वीं-12वीं शताब्दी) में देवगढ़ में मंदिर निर्माण विविधरूप से होता रहा जैसा कि अनेक जैन मंदिरों के अवशेषों से ज्ञात होता है। चंदेलवंश के राजा कीर्तिवर्मन का एक लेख भी यहाँ मिला है जिसमें इस स्थान को कीर्तिगिरि कहा गया है जो संभवतः उस पहाड़ी के कारण कहा गया होगा जिस पर आज जैन मंदिर स्थित हैं।

ललितपुर जिले में चाँदपुर और देघई मध्यकालीन स्थापत्य और शिल्पकला के केन्द्र थे जहाँ से जैन धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों भी प्राप्त हुई। ये स्थान भी ब्राह्मण और जैन मंदिरों के साथ-साथ स्थित होने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। सीरों खुर्द (प्राचीन सीयडोणी जिला-ललितपुर) भी जैन शिल्पकला के लिए स्मरणीय है। यहाँ एक विशाल जैन मंदिर पूजा में है जिसमें तीर्थकर यक्षी और अन्य प्रतिमाओं के अवशेष बड़ी मात्रा में देखे जा सकते हैं। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि 10वीं-11वीं शताब्दी में प्रतीहारों के काल के काल में सीरों-खुर्द स्थापत्य और शिल्पकला का बड़ा भारी केन्द्र था। ललितपुर जिले से लगा हुआ मध्यप्रदेश का क्षेत्र है जहाँ चंदेरी, बूढी-चंदेरी और थोबन (जिला-गुना) में प्राप्त स्थापत्य अवशेषों और मूर्तियों से जैन कला के विकास और प्रचार का आभास मिलता है। थोबन के पास प्राचीन विशाल मूर्तियों को सुरक्षित रखने वाले जैन मंदिर अब भी पूजा में है।

अहार (जिला-टीकमगढ़) में चंदेल काल के मंदिरों और मूर्तियों के अवशेष मिलते हैं जहाँ मंदिरों के अतिरिक्त अन्य भवनों और तड़ागों का निर्माण भी कराया गया। शान्तिनाथ बाहुबली और अन्य जैन मंदिरों के साथ यहाँ कई मानस्तम्भों का निर्माण हुआ। स्थानीय संग्रह में सुरक्षित गरुडासीन यक्षी चक्रेश्वरी की प्रतिमा उस क्षेत्र की मध्यकालीन शिल्पकला का प्रतिनिधित्व करती है। जैन मूर्तियों की पीठिकाओं पर प्राप्त लेखों से यहाँ की कई जैन श्रेष्ठियों का पता चलता है जिन्होंने इस जैन केन्द्र के विकास में योगदान किया। टीकमगढ़ के पास ही बानपुर से एक सर्वतोभद्र-सहस्रकूट मिला है। जो आकार में छोटा होने पर भी सुन्दर रेखा शिखर के कारण उल्लेखनीय है। इसमें गंगा-यमुना, नवग्रह, पत्रलता तथा आदिनाथ और सरस्वती प्रतिमाएँ सुन्दरता से उत्कीर्ण की गई है। इसी प्रकार टीकमगढ़ के पास पपौरा और नवगढ़ा जैनियों के पवित्र

स्थान थे।

सागर जिले में बीनाबरहा स्थान पर जैन कला के अवशेष मिलते हैं जिनमें दो मंदिर और एक गन्धकुटी मुख्य हैं। इनमें से एक मंदिर तीर्थंकर चन्द्रप्रभु को समर्पित है और दूसरा शान्तिनाथ को। ये मंदिर यद्यपि बहुत बाद के हैं, फिर भी जैन मंदिरों के निर्माण की परम्परा परवर्ती काल में दर्शाते हैं।

छतरपुर जिले में स्थित खजुराहों अपनी स्थापत्य कला और शिल्पकला के लिए विश्व विख्यात है जहाँ चंदेल राजाओं के समय एक बहुत बड़े मंदिर समूह का निर्माण हुआ। इतना बड़ा कला क्षेत्र जैनधर्म से कैसे अछूता रह सकता था। फल स्वरूप यहाँ अनेक जैन मंदिरों का निर्माण हुआ जिनमें से पार्श्वनाथ और आदिनाथ मंदिर तथा शान्तिनाथ ओर घण्टाई मंदिरों के अवशेष अब भी देखे जा सकते हैं। घण्टाई मंदिर का मुखमण्डप और महामण्डप ही अवशेष है जिनका समतल वितान चार ऊँचे स्तम्भों पर टिका हुआ है। इस मंदिर के अलंकृत स्तम्भ अपने निर्माण कौशल और सूक्ष्म शिल्पांकन के लिए विशेष रूप से दर्शनीय है। जिनके ऊपरी भाग पर कीर्तिमुखों से लटकते हुए घंटे मनमोहक हैं। संभवतः इन्हीं घण्टों की सुन्दर शिल्पकारी के कारण इसको घण्टाई नाम दिया गया होगा। मंदिरों में सुन्दर घण्टों की सजावट और उसका अलंकृत वितान उसके शिल्पांकन में विशेष उल्लेखनीय माने गये हैं। मंदिरों के संदर्भ में इसलिए उनकी चर्चा शिल्प साहित्य में विशेषतया की गई है। मत्स्यपुराण में मंदिर निर्माण के महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है—

घण्टावितानसतोरणचित्रणांकं,

नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम्।

यः कारयेत् सुरंगुहं विविधध्वजांकं,

श्रीस्तं न मुच्यति सदा दिवि पूज्यते च॥

इसके महामण्डप द्वार के ऊपर अष्टभुजी यक्षी चक्रेश्वरी गरुड़ पर आसीन है। द्वार के उत्तरंग पर 16 पवित्र प्रतीक बने हैं। जिन्हें तीर्थंकर महावीर की माता ने उनके जन्म से पूर्व (स्वप्न में) देखें।

पार्श्वनाथ मंदिर 10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की कृति है और खजुराहो के जैन मंदिर कला की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। अपनी योजना और निर्माण विधि में यह खजुराहों के अन्य मंदिरों से भिन्न है। इसमें न तो कक्षासन वातायन है और न इसका भित्तिभाग स्थान-स्थान पर बाहर

की और उभरा है। बहारी दीवार पर तीन स्तरों पर बनी हुई सुन्दर मूर्तियाँ अपनी कला और अभिव्यक्ति के लिए बेजोड़ हैं। इन मूर्तियों में वैष्णव विषयों की प्रधानता है, जैसे परशुराम, बलराम-रेवती, राम-सीता, हनुमान, कृष्ण का यमलार्जुन आख्यान, लक्ष्मी-नारायण आदि। शिव, अग्नि, रति कामदेव और विविध सुरसुन्दरी प्रतिमाएँ अपने भव्य रूप में उत्कीर्ण हैं।

क्षिप्र-वितान और उसके लटकते हुए आश्चर्य जनक लम्बनों को देखता हुआ दर्शक मंदिर के महामण्डप अन्तराल और प्रदक्षिणपथ में प्रवेश करता है। महामण्डप के द्वार पर गरुड़ासीन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्ति तथा गर्भगृह के द्वार पर जिन मूर्तियों निर्मित हुई हैं। ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों का अंकन इस काल की धार्मिक सहिष्णुता, रचनात्मकता और सहकार भावना का द्योतक है। इसके समीप आदिनाथ मंदिर 11 वीं शताब्दी का है जिसका गर्भगृह और अन्तराल ही अपने प्राचीन रूप में हैं। इसके गर्भगृह की भद्रयिकाओं में यक्षी प्रतिमाएँ बनी हैं जिनके ऊपर ऊँचा शिखर खजुराहों की मंदिर निर्माण कला का परवर्ती रूप दर्शाता है। शान्तिनाथ मंदिर आज भी पूजा में है जिसके अन्दर आदिनाथ की एक विशाल प्रतिमा स्थापित है और साथ ही बाद में बनी अनेक देव कुलिकाओं में जैन मूर्तियाँ और स्थापत्य खण्ड देखने को मिलते हैं। इसकी कुछ मूर्तियाँ जैसे तीर्थंकर के मात-पिता की मूर्तियाँ, अपने सुन्दर कलात्मक निर्माण के लिए आकर्षक हैं।

स्थानीय खजुराहो संग्रहालय में बहुत सी जैन प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं। जिनमें शासन देवी मनोवेगा, एक मातृका, जैन दम्पति और तीर्थंकर आदिनाथ प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की प्रतिमा सिंहासन पर कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित है, जिसके दोनों ओर शासनदेवता और उपासक निर्मित किये गये हैं, प्रभावली पर जिन प्रतिमाएँ, पवित्रगजमूर्तियाँ, मालाधारी विद्याधर आदि ऊपर की ओर उत्कीर्ण हैं।

उपरोक्त मंदिरों में जैन तीर्थंकर, यक्ष-यक्षिणी, दिग्पाल, सुरसुन्दरी, उपासक और जनसाधारण, पशु पक्षी, गजशार्दूल, नर्तक-गायक, घरेलू दृश्य आदि सभी कुछ अपने अनेक रूपों और प्रकारों में देखने को मिलते हैं। लगता है पूरा दैवी और भौतिक जगत मूर्तरूप में साकार हो गया है, और सभी मिलकर ऐसे दिव्य वातावरण का निर्माण करते हैं जिससे परे संसार में कुछ भी नहीं रह जाता। निःशेष का

यह बोध एक कुशल शिल्पकार के कला-कौशल से ही प्राप्त होना संभव हुआ है। खजुराहो तो एक प्रतिनिधि है उस क्षेत्र का जिसका प्रत्येक भाग कलात्मक अभिरूचि और धार्मिकभावना से अनुप्राणित था।

इस प्रकरण में जैनकला भण्डार को दर्शाने वाले एक संग्रहालय को नहीं भुलाया जा सकता जो बुन्देलखण्ड की जैन कला का संरक्षक है। यह संग्रहालय छतरपुर जिले के घुबेला स्थान पर एक प्रसाद में स्थित है। घुबेला संग्रहालय में जैन तीर्थकर मूर्तियों का एक विशाल संग्रह है जो लगभग 10वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य की हैं। इनको देखने से ऐसा लगता है कि यह भूभाग मध्यकाल में एक ऐसा केन्द्र था- जहाँ जैन स्थापत्य और शिल्पकला अबाध रूप से फूली फली और आसपास के क्षेत्रों में भी फैली। इन प्रतिमाओं में सर्वतोभद्रिबा और श्रीवत्स लांछनयुक्त जैन तीर्थकर हैं जैसे नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, अजितनाथ, आदिनाथ आदि। इनमें यक्ष गोमेद्य और यक्षी अम्बिका के साथ उनके ऊपर नेमिनाथ की प्रतिमा कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। देवी अम्बिका और चक्रेश्वरी प्रतिमाएँ भी उच्चकोटि की शिल्पकला की परिचायक हैं।

जैनकला के इस विवेचन में विदिशा जिले के कुछ स्थानों का उल्लेख करना समीचीन होगा जहाँ जैन स्थापत्य और शिल्पकला का विकास हुआ। इस प्रकरण में ग्यारसपुर का मालादेवी मंदिर स्मरणीय है जो न केवल शिल्पकला की दृष्टि से किन्तु मंदिर निर्माण कला के विकास की दृष्टि से भी एक प्रतिमान है और पूर्वमध्यकाल और उत्तर मध्यकाल के संक्रमण काल का परिचायक है। बड़ोह में एक विशाल जैन मंदिर के अवशेष मिलते हैं, जो अपने जिर्णोद्धार किये हुए रूप में देखे जा सकते हैं और 11वीं शताब्दी की कला दर्शाता है। इस प्रकार बुन्देलखण्ड और उसके आसपास के क्षेत्र पर विहंगम दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि यह भूभाग प्राचीन काल से जैनकला को पोषण करने में अपना अनूठा योगदान करता रहा है। जहाँ यह क्षेत्र अपने शौर्य और पराक्रम के लिए विख्यात था वहीं इसने कलात्मक अभिरूचि को भी प्रश्रय दिया है और जैनधर्म में निहित शान्ति और सद्भाव को अग्रसर किया।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,
नई दिल्ली

'संस्कार सागर' प्रवेशांक मई 99 से साभार

आपके पत्र

सबकी प्रिय 'जिनभाषित' पत्रिका का सितम्बर 2007 का अंक मिला पढ़ा। इस अंक में प्रकाशित पूज्य मुनिवर 'क्षमासागर जी' की 'निलिप्त' और 'प्रतिदान' कविताएँ पढ़ी। प्रकृति से जुड़े कविप्रवर ने 'चिड़िया' के माध्यम से हमें संदेश दिया है कि हम सब भी विषम परिस्थिति में सहिष्णु बने रहें। सांसारिक कार्यों में लिप्त रहते हुए भी अंतस् से कैसे 'निलिप्त' बने रहें और अपने लक्ष्य की ओर अपनी चेतना को उर्ध्वगामी बनाते हुए कैसे आगे बढ़ते जाएँ-

उसे याद रहता है सदा
गीत गाना/ चहचहाना
असीम आकाश में उड़ना
और अपना चिड़िया होना

और फिर 'प्रतिदान' कविता में कवि ने महावीर के 'अपरिग्रहवाद' की प्रस्तुति कितनी सहजता से की है-

चिड़िया ने
अपनी चोंच में
जितना समाया
उतना पिया
उतना ही लिया

समाज को अपनी अनूठी काव्यविधा देनेवाले इस संवेदनशील कवि की साधना निरन्तर, अनवरत, चलती रहे। इन चरणों में शत-शत वन्दना।

अरुणा जैन
102, तुलसी आँगन
प्लॉट नं. 90, सेक्टर 12 वाशी, नवी मुम्बई

जिज्ञासा- क्या वातवलयों में जो वायु है, उसमें वायुकायिक जीव होते हैं या नहीं? या वह वायुकाय है।

समाधान- इस जिज्ञासा के समाधान में श्री मूलाचार गाथा 212 में इस प्रकार कहा है-

वादुब्भामो उक्कलि मंडलि गुंजा महा घण तणू य।

ते जाण वाउजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ॥ 212 ॥

अर्थ- घूमती हुई वायु उत्कलिरूप वायु मंडलाकार वायु, गुंजा वायु, महावायु, धनोदधिवलय की वायु, और तनुवातवलय की वायु को वायुकायिक जीव जानो। जानकर उनका परिहार करो।

आचारवृत्ति- (आचार्य वसुनंदि) बात शब्द से सामान्य वायु को कहा है। जो वायु घूमती हुई ऊपर को उठती है, वह उद्भ्रमवायु है। जो लहरों के समान होती है वह उत्कलिरूप वायु है। पृथ्वी में लगकर घूमती हुई वायु मंडलिवायु है। गूँजती हुई वायु गुंजावायु है। वृक्षादि को गिरा देनेवाली वायु महावायु है। घनोदधि-वातवलय, तनुवातवलय की वायु घनाकार है और पंखे आदि से की गई वायु अथवा लोक को वेष्टित करनेवाली वायु तनुवात है। उदर में स्थित पाँच प्रकार की वायु होती है। अर्थात् हृदय में स्थित वायु प्राणवायु है। गुदा में स्थित अपानवायु है। नाभिमंडल में समान वायु है। कंठप्रदेश में उदानवायु है। ओर संपूर्ण शरीर में रहनेवाली वायु व्यानवायु है। ये शरीर संबंधी पाँच वायु हैं। इसी प्रकार से ज्योतिष्क आदि स्वर्गों के विमान के लिये आधारभूत वायु, भवनवासियों के स्थान के लिये आधारभूत वायु इत्यादि वायु के भेद, इन्हीं उपर्युक्त भेदों के अंतर्गत आते हैं। इन्हें वायुकायिक जीव जानो और जानकर उनका परिहार करो, ऐसा तात्पर्य है।

प्रश्नकर्ता- कर्मकाण्ड में प्रकृतिबन्ध के 4 भेद कहे हैं- सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव इनको समझाने की कृपा करें?

समाधान- कर्मकाण्ड गाथा 122 से 124 तक इन चार प्रकृतिबंध के भेदों का वर्णन किया गया है। उसी के आधार से यहाँ लिखा जाता है।

1. **सादि बन्ध-** जिस कर्म के बन्ध का अभाव होकर वही कर्म जब पुनः बन्धने लगता है, तब उसे सादि बन्ध कहते हैं। जैसे ज्ञानावरण की पाँच प्रकृतियों का बंध

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त के जीव को निरन्तर हो रहा था। वह जीव जब ग्यारहवें उपशान्तकषाय-गुणस्थान को प्राप्त हुआ, तब उसके ज्ञानावरण कर्म का बन्ध रुक गया। वह ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव जब उतरते हुए 10वें गुणस्थान में आया, तब ज्ञानावरणकर्म का बन्ध होना प्रारंभ हो गया। तो यह जो ज्ञानावरणकर्म का बन्ध होना प्रारम्भ हुआ यह सादि बन्ध कहलाता है।

2. **अनादि बन्ध-** जिस जीव के अनादिकाल से जिसकर्म का बन्ध निरन्तर हो ही रहा है वह अनादि बन्ध है। जैसे प्रत्येक जीव के ज्ञानावरण कर्म का बन्ध अनादि से हो रहा है, शर्त यह है कि उसने श्रेणी आरोहण कभी न किया हो अर्थात् उसने ग्यारहवाँ गुणस्थान कभी प्राप्त न किया हो, ऐसे जीव के उपर्युक्त उदाहरण के अनुसार ज्ञानावरण कर्म का बन्ध अनादि से निरन्तर हो ही रहा है। तो उसका यह बन्ध अनादि बन्ध कहलाता है।

3. **ध्रुव बन्ध-** जो बन्ध अनादिकाल से हो रहा है और अनन्तकाल तक होता ही रहेगा वह ध्रुव बन्ध कहलाता है। यह अभव्य तथा अभव्यसम जीवों के पाया जाता है। तथा जब तक बंध की व्युच्छिति नहीं होती, तब तक होता रहता है।

4. **अध्रुव बन्ध-** जो बन्ध अभी तो हो रहा है, परन्तु जिसका अन्त आ जाये, वह अध्रुव बन्ध है। यह भव्य जीवों के होता है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में पहले ज्ञानावरण का बन्ध होता था, परन्तु 11वें गुणस्थान में पहुँचते ही बन्ध होना रुक गया। अतः यह बन्ध अध्रुव बन्ध हुआ।

आठों कर्मों की प्रकृतियों में इस बन्ध संबंधी जो विशेषता है उसको कहा जाता है-

1. ज्ञानावरण की पाँच प्रकृतियाँ, दर्शनावरण की नौ, अन्तराय की पाँच, मिथ्यात्व, 16 कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस शरीर, अगुरुलघु उपघात, निर्माण, वर्णादि चार, कार्मणशरीर में 47 ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं। बन्धव्युच्छिति होने से पूर्व प्रत्येक जीव को इनका बन्ध प्रति समय होता ही रहता है। इनमें उपर्युक्त चारों प्रकार का बंध पाया जाता है।

2. उपर्युक्त 47 के अलावा जो 73 प्रकृतियाँ बंधयोग्य बचती हैं (148 प्रकृतियों में से वर्णादि 16+ बंधन 5 + संघात 5+सम्यक्मिथ्यात्व + सम्यकप्रकृति =28 घटाने पर बन्ध योग्य प्रकृतियाँ 120 शेष रहती हैं।) उनमें सादि और

अधुव ये दो ही बंध पाये जाते हैं।

3. इतना विशेष है कि वेदनीयकर्म का बन्ध 13वें गुणस्थान तक निरन्तर होता ही रहता है, अतः वेदनीय कर्म में सादि बन्ध नहीं पाया जाता, अन्य तीन पाये जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- एक विदुषी महिला, बड़गाँव।

जिज्ञासा- क्या तीर्थकर केवलज्ञान होते ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, या उनके कुछ समय तक दिव्यध्वनि होना नियामक होता है?

समाधान- तीर्थकर चाहे विदेहक्षेत्र के हों या भरत-ऐरावत क्षेत्र के उनको केवलज्ञान होने के उपरान्त पृथक्त्व वर्ष तक विहार करना ही होता है। इस काल में उनकी दिव्यध्वनि निरन्तर होती रहती है। इससे संबंधित आगम प्रमाण इस प्रकार है-

1. श्री धवला पु. 7, पृष्ठ-57, तीर्थकरप्रकृति के उदयवाले सयोगकेवली का विहारकाल सबसे जघन्य भी वर्ष पृथक्त्व से कम नहीं पाया जाता। इस उदयस्थान का उत्कृष्ट काल गर्भ से आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि है।

2. श्री धवला पु.12, पृष्ठ-494- तीर्थ विहार का काल जघन्य स्वरूप से वर्ष पृथक्त्व मात्र पाया जाता है।

3. श्री धवला पु. 15, पृष्ठ-67- तीर्थकर नामकर्म का उदीरण काल जघन्य से वर्ष पृथक्त्व और उत्कर्ष से कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है।

षट्खण्डागम परिशीलन पृष्ठ-504- यहाँ वर्ष पृथक्त्व को कम इसलिए किया गया है कि तीर्थकर का विहार जघन्य रूप से वर्ष पृथक्त्व काल तक पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त पंचसंग्रह पृष्ठ 373-374 तथा संस्कृत पंचसंग्रह 179 पर भी इसी प्रकार का कथन पाया जाता है।

इस प्रश्न का उत्तर पूज्य आचार्यश्री ने तत्त्वार्थसूत्र पढ़ाते समय दिया था, जो मुझे याद था। परन्तु इसके प्रमाण मेरे पास नहीं थे। अतः मैंने उपर्युक्त सभी प्रमाण पं. जवाहरलाल जी शास्त्री, भिण्डर वालों से पूछकर लिखे हैं। वर्तमान में पं. जवाहरलाल जी शास्त्री पिछले 8-10 वर्षों से बिस्तर पर हैं। उनके शरीर की सारी नसों में पूर्ण रूप से शक्ति हीनता हो गई है। परन्तु उनके क्षयोपशम की विशिष्टता का यह उदाहरण है कि उनको अभी तक सारे शास्त्रीय सन्दर्भ ज्यों के त्यों स्मृति में हैं। वे केवल

ऊँगली के इशारे से बताते हैं, बोलने या लिखने की सामर्थ्य नहीं है। मैं समय-समय पर उनसे अपनी समस्याओं का समाधान लेता रहता हूँ। जिनवाणी के ऐसे महान् सपूत को शीघ्र आरोग्य लाभ हो।

जिज्ञासा- बल और वीर्य में क्या अन्तर है?

समाधान- इस प्रश्न के उत्तर में श्री मूलाचार गाथा 413 की आचार वृत्ति में वसुनन्दी आचार्य ने इस प्रकार कहा है- बलमाहारौषधादिकृतसामर्थ्य, वीर्यवीर्यान्तराय-क्षयोपशमजनितं संहननापेक्षं स्थामशरीरावयवकरणचरण जंघोरुकटिस्कन्धादिघनघटितबंधोपेक्षं।

अर्थ- आहार तथा औषधि आदि से होने वाले सामर्थ्य को बल कहते हैं। तथा जो वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, संहनन की अपेक्षा रखता है तथा स्वस्थ शरीर के अवयव- हाथ, पैर, जंघा, घुटने, कमर, कन्धे आदि के मजबूत बन्धन की भी अपेक्षा से सहित है, उसे वीर्य कहते हैं।

प्रश्नकर्ता- राजकुमारी जैन, ललितपुर

जिज्ञासा- मुनियों के गोचरीवृत्ति आदि पाँच विशेषणों को समझाइये?

समाधान- उपर्युक्त प्रश्न का समाधान श्री चारित्रसार रचियता चामुण्डरायदेव के आधार से लिखा जाता है-

1. गोचार अथवा गोचरीवृत्ति- जिस प्रकार गाय को यदि कोई युवती लीलापूर्वक आभूषण पहनकर घास डालने को आवे, तो भी गाय उस युवती की सुन्दरता नहीं देखती, किन्तु घास खाने पर ही अपना लक्ष्य रखती है, तथा जिसप्रकार वह गाय अनेक देश की घास, लता आदि को खाती है, और जैसी मिलती है, जितनी मिलती है, उसे ही खाती है, वह किस तरह डाली गई है, किसने डाली है आदि बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं रखती, उसी प्रकार मुनि भी भिक्षा देनेवाले पुरुषों की कोमलता, सुन्दरता, वेष और विलास आदि देखने में कभी इच्छा नहीं रखते, और न सूखा-पतला आहार आदि की विशेष योजना को देखते हैं, जो सामने आ जाता है, उसे ही खा लेते हैं। इसलिए गाय के समान भोजन करने से इसे गोचरीवृत्ति कहते हैं।

2. अक्षप्रक्षण- जिस प्रकार कोई वैश्य रत्नों से भरी गाड़ी को घी-तेल आदि चिकनाहट से धुरा और पहियों को ठीककर योग्य स्थान पर पहुँचता है, उसी प्रकार मुनिराज भी गुणरूपी रत्नों से भरी हुई इस शरीर रूपी गाड़ी को निर्दोष भिक्षारूपी थोड़ी सी चिकनाहट लगाकर आयु

रूपी धुरी-पहियों को ठीककर अपने पहुँचने योग्य समाधि रूपी नगर में पहुँचाते हैं। इसे अक्षप्रक्षणवृत्ति कहते हैं।

3. उदराग्नि प्रशमन- जिस प्रकार किसी भण्डार में आग लग जाये, तो गृहस्थ उसे पवित्र जल से अथवा अपवित्र जल से बुझाता है, उसी प्रकार मुनिराज भी सरस अथवा नीरस जैसा कुछ भी आहार मिल जाता है, उसी से अपने पेट की अग्नि को शान्त कर लेते हैं, यह उदराग्नि-प्रशमन वृत्ति है।

4. भ्रमराहार वृत्ति- जिस प्रकार भ्रमर किसी भी फूल को बाधा न देता हुआ रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार मुनिराज भी दाता को बाधा न पहुँचाते हुए आहार ग्रहण करते हैं। इसे भ्रमरीवृत्ति भी कहा जाता है।

5. गर्तपूरण- जिसप्रकार किसी गड्ढे को अच्छी-बुरी मिट्टी से भरकर पूरा कर देते हैं, उसीप्रकार मुनिराज भी स्वादिष्ट अथवा बेस्वाद किसी तरह के भी आहार से अपनी पेटरूपी खाई को भर लेते हैं। इसको श्वभ्रपूरण भी कहते हैं।

यह प्रकरण राजवार्तिक 9/6 तथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा 399 की टीका आदि स्थानों पर भी उपलब्ध होता

है।

वास्तव में दिगम्बर साधु की भिक्षावृत्ति तो उपर्युक्त प्रकार ही होनी चाहिए, परन्तु वर्तमान में अधिकांश मुनिराजों की आहारवृत्ति इससे मेल नहीं खाती है। आजकल बहुत से मुनि एक ही चौके में मनचाहा आहार बनवाकर लेने लगे हैं। कोई मुनि तो (आगरा के निकट के एक स्थान पर चातुर्मास कर रहे मुनि) बिना पड़गाहन किसी भी श्रावक के घर में प्रवेश कर जाते हैं, ओर मनचाहा आहार बनवाते हैं। इन सब कार्यों में मुख्य भूमिका उस संघ के ब्रह्मचारी भाई एवं ब्रह्मचारिणी बहिनों की होती है। वे श्रावक को तरह-तरह के जूस, आइसक्रीम, हलुवा, पत्तियों के साग एवं चटनी, पत्ता गोभी की सब्जी, आदि बनाने को बार-बार यह कहकर मजबूर करते हैं, कि महाराज को ये चीजें बहुत पसंद हैं। जरूर बननी चाहिए। श्रावक के एक दिन के आहार कराने में सैकड़ों रुपये खर्च हो जाते हैं। पर मजबूरी में क्या करे? यदि उपर्युक्त वृत्ति से सभी साधु आहार लेने लगे, तो आगम की आज्ञा का पालन भी हो और श्रावक भी निर्विकल्प हो जाये।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

भगवान् पार्श्वनाथ

जम्बूद्वीप-संबंधी भरतक्षेत्र के काशीदेश में स्थित वाराणसी नगरी में काश्यपगोत्री, उग्रवंशी राजा अश्वसेन राज्य करते थे। वामादेवी उनकी महारानी थीं। उन महारानी ने पौष कृष्ण एकादशी के दिन सानत स्वर्ग के प्राणत इन्द्र को तीर्थकर सुत के रूप में जन्म दिया। तेरासी हजार सात सौ पचास वर्ष का काल बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था। इनकी आयु सौ वर्ष थी, वर्ष धान्य के अंकुर के समान हरा था और शरीर की ऊँचाई नौ हाथ थी। सोलह वर्ष की अवस्था में ये नगर के बाहर वनविहार करते हुए अपने नाना महीपाल के पास पहुँचे। वहाँ एक साधु पंचाग्नि तप के लिए लकड़ी फाड़ रहा था। इन्होंने उसे रोका और बताया कि लकड़ी में नागयुगल है। वह नहीं माना और क्रोध से युक्त होकर उसने वह लकड़ी काट डाली। उसमें जो नागयुगल था वह कट गया। मरणासन सर्पयुगल को इन्होंने संबोधित किया जिससे शान्तचित्त हो वे स्वर्ग में धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। तीस वर्ष के कुमारकाल के पश्चात् अपने पिता के वचनों के स्मरण से ये विरक्त हुए और पौष कृष्ण एकादशी के दिन अश्व वन में प्रातः काल

तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षित हुए। पारणा के दिन गुल्मखेट नगर में धन्य नामक राजा ने आहारदान देकर पञ्चाश्रचर्य प्राप्त किये। छद्मस्थ अवस्था के चार माह व्यतीत कर अश्व वन में जब ये तैला का नियम लेकर देवदारु वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में थे तब कमठ के जीव शम्बर नामक देव से सात दिन तक इन पर विभिन्न प्रकार से घोर उपसर्ग किया। उस समय उन धरणेन्द्र और पद्मावती ने आकर उपसर्ग का निवारण किया। चैत्र कृष्ण त्रयोदशी के दिन प्रातःकाल घातिया कर्म नष्ट हो जाने से इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान् के समवशरण की रचना हुई जिसमें सोलह हजार मुनि, छत्तीस हजार आर्यिकार्यें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकार्यें, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यच थे। उनहत्तर वर्ष सात मास विहार करके अन्त में एक मास की आयु शेष रहने पर सम्मेदाचल पर छत्तीस मुनियों के साथ इन्होंने प्रतिमायोग धारण किया और श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातः वेला में अघातिया कर्म नष्ट हो जाने पर निर्वाण पद प्राप्त किया।

मुनि श्री समतासागरकृत 'शलाका पुरुष' से साभार

ग्रन्थ-समीक्षा

नाम- ऐक्युप्रेसर फुट रिफलेक्सोलॉजी

प्रकाशक - इन्द्रा पब्लिशिंग हाऊस

मूल्य - रु. 195

भाषा - हिन्दी, रंगीन चित्र सहित

लेखक - डी. सी. वाझल्य, ए-92, शाहपुरा

भोपाल- 462 039 म.प्र. फोन: 0755-2424755

'ऐक्युप्रेसर फुट रिफलेक्सोलॉजी' श्री धर्मचन्द्र जी वाझल्य द्वारा लिखित लघुकाय पुस्तक है, जो अपने- आप में सम्पूर्ण अहिंसक चिकित्सापद्धति को संक्षेप में किन्तु स्पष्ट रूप से प्रमुख शरीरतंत्रों का विवरण, रोगों के उपचार की विधि, विभिन्न रोगों के लक्षण, कारण तथा प्रतिबिम्ब केन्द्रों की सूची व्यवस्थित तरीके से समाहित किए हुए है। फुट एवं हैण्ड रिफलेक्सोलॉजी अन्य चिकित्सा-पद्धतियों से भिन्न है। यह बिना औषधि सेवन के ही शरीर के विभिन्न रोगों को ठीक करने में प्रभावी चिकित्साविधि है। इस विधि में हाथ की अँगुलियों से या अँगूठे से पैर के तलुए, साइड एवं ऊपरी भाग में इसी प्रकार हथेली में दबाव देकर चिकित्सा की जाती है। लेखक ने अध्याय 1 से अध्याय 7 तक क्रमशः परावर्ती उपचार की परिभाषाएँ, आधुनिक एवं प्राचीन संदर्भ, चिकित्सा का उद्गम स्थान, वर्तमान में उसकी स्थिति, वैज्ञानिकता, खोज, सिद्धान्त एवं परावर्ती प्रभाग, पैर एवं हथेलियों की संरचना, शिथिलीकरण, दबाव देने की विभिन्न विधियाँ, शरीर संरचना तथा उसके घटक आदि का सचित्र विवरण देकर विषय को सरल एवं रोचक बना दिया है। अध्याय 8 से 17 तक शरीर की विभिन्न प्रणालियों के कार्य करने की विधि रंगीन चित्रों के माध्यम से सरल भाषा में समझा दी गई है। साथ ही उस तंत्र से सम्बन्धित रोग, रोगों का कारण, लक्षण प्रतिबिम्ब केन्द्र, उनके उपचार की विधि भी अच्छी तरह से समझाई गई है। अध्याय 19 से 21 तक हाथ में क्रमशः प्रत्यावर्ती (प्रतिबिम्ब) प्रभाग, मानसिक तनाव एवं अवसाद, परीक्षण उपचार निर्देशिका एवं शियात्सु का परिचय, उपचार विधि देकर इसे स्वयं पढ़ो, समझो एवं अभ्यास करनेवाली कृति बना दिया है।

परिशिष्ट 1 में व्याधियों की सूची, परावर्ती प्रभाग एवं संदर्भ देकर उपचारकों को सभी सूचनाएँ सुलभ कर दी हैं।

परिशिष्ट 2 में संदर्भ ग्रन्थ एवं पुस्तकों की सूची देकर पुस्तक की प्रमाणिकता सिद्ध की है।

परिशिष्ट 3 में पग में परावर्ती स्थानों का रंगीन चित्र देकर उपचारकों को उपचार करना सरल एवं ग्राही बना दिया है।

यह पुस्तक विषयवस्तु की वैज्ञानिकता दर्शाती है, साथ ही लब्धप्रतिष्ठ ऐलोपैथी के चिकित्सक द्वारा संशोधित एवं प्रमाणित है।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इस विद्या के प्रवर्तक बीसवीं सदी के आरंभ में अमेरिकन चिकित्सक डॉ० विलियम एच फिटजेराल्ड थे, जो सेनफ्रान्सिस, अस्पताल हार्टफोर्ड कन्सास में नाक एवं गला विभाग के अध्यक्ष थे। लेखक पिछले 15 वर्षों से दिल्ली एवं भोपाल में सेवाभावी ऐक्युप्रेसर चिकित्सा कर रहे हैं। वे अपने अनुभव एवं देशी-विदेशी साहित्य के अध्ययन का निचोड़ इस कृति में दर्शाने में सफल हुए हैं।

ऐक्युप्रेसर फुट रिफलेक्सोलॉजी मानवता को प्रकृति का वरदान है। हाथ की हथेली एवं पैर के पंजों में प्रकृति ने रिपेयरिंग किट प्रदान किया है, जहाँ दबाव युक्त स्पर्श से शरीर के विभिन्न अंगों को उद्दीप्त कर चिकित्सा की जाती है। यह प्रिवेन्टिव ट्रीटमेन्ट एवं होलिस्टिक चिकित्सा-पद्धति है। यह शरीर के प्रत्येक अंग का पग एवं हथेली से लाजवाब संबंध दर्शाती है। इस चिकित्सा के फल स्वरूप-

- ♦ रक्तसंचार में सुधार होता है, जिससे समस्त अंगों को ऑक्सीजन मिलती है।
- ♦ रक्तवाहिनियों का अवरोध दूर होता है।
- ♦ नाडीतन्त्र एवं ग्रन्थितंत्र एवं अन्य सभी तंत्र सुचारु रूप से कार्य करने लगते हैं।
- ♦ दर्दनिवारक एवं सूजननिवारक है।
- ♦ रोग-प्रतिरोध-क्षमता का विकास होता है।
- ♦ सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ संतुलित एवं स्फूर्तिमान हो जाता है।

लेखक ने अपने अनुभव के आधार पर जिन सामान्य तथा जटिल रोगों का उपचार किया है, उनका उल्लेख कर चिकित्सापद्धति कितनी कार्यकारी है यह भी दर्शा दिया है। विवरण इस प्रकार है-

अब तक सप्ताह में दो दिन अवकाश के समय में इन्होंने लगभग 500 व्यक्तियों का रिफ्लेक्सोलॉजी से उपचार किया है। कहीं-कहीं तो आश्चर्यजनक परिणाम भी मिले हैं।

इस उपचारपद्धति से कुछ जटिल रोग भी ठीक होते देखे गये हैं। लेखक ने इसका विवरण ग्रंथ की प्रस्तावना में दिया है, जो इस प्रकार है—

1. रीढ़ की हड्डी से संबंधित रोग जैसे सरवाईकल स्पॉन्डोलाइटिस, गर्दन तथा सियाटिका, कंधे में दर्द, कमर का दर्द, पीठ का दर्द इत्यादि में 90 प्रतिशत सफलता मिली है।

2. बवासीर पाइल्स में 90 प्रतिशत सफलता प्राप्त हुई है।

3. अस्थमा आदि तो, जो बहुत पुराने नहीं थे, लगभग 80 प्रतिशत ठीक हुए हैं। पुराने दमा के मरीजों को भी आराम हुआ है।

4. हिस्टीरिया, लिकोरिया में 90 प्रतिशत सफलता।

5. बच्चों द्वारा बिस्तर में पेशाब करना 95 प्रतिशत सफलता।

6. सिरदर्द, साइनस, माइग्रेन में 98 प्रतिशत।

7. मूत्रप्रणाली से संबंधित बीमारी जैसे जलन होना, रुक-रुक कर पेशाब आना 90 प्रतिशत सफलता।

8. उदर की बीमारियाँ हाथ पैर घुटने आदि में दर्द, एडी, पैरों की सूजन लगभग ठीक होते देखे गये हैं।

9. लकवे के मरीज शीघ्र ठीक होते हैं यदि आरंभ में ही चिकित्सा की जाये तो सफलता लगभग 98 प्रतिशत।

10. पारकिन्सन बीमारी, टैकीकार्डिया में आराम मिलता है।

11. अनिद्रा, एसिडिटी, तनाव तथा निम्न रक्तचाप, टेनिसएल्वो, अनियमित मासिक धर्म, आँख, कान, गले के रोग, सायनस आदि ठीक होते हैं।

सम्पूर्ण विश्व में इसकी प्रसिद्धि इसके परिणामों पर आधारित है इसकी विशेषताएँ निम्नानुसार हैं—

1. यह कार्यकारी है।

2. सीखना, उपचार करना सरल है।

3. हानिरहित है।

4. रोग निदान में सहायक है।

5. सम्पूर्ण एवं स्थायी लाभ मिलता है।

6. अन्य चिकित्सापद्धति से मेल है।

7. सभी उम्र के रोगियों को लाभप्रद है।

अन्य चिकित्सापद्धतियों की तरह यह सभी रोगों का उपचार नहीं है, किन्तु सफलता का प्रतिशत उत्साहवर्धक है।

इसमें किसी भी उपकरण की, मशीन की आवश्यकता नहीं है, बस उपचारक के दो हाथ, रोगी के दो पैर या हाथ पर्याप्त हैं।

सामान्य ज्ञानवाला व्यक्ति इसे सीख सकता है। प्रत्येक घर में कम से कम एक व्यक्ति इसे अवश्य सीखे एवं स्वयं एवं अन्य की मदद करे।

यदि कोई सीखना चाहता है, तो उपर्युक्त पते पर लेखक से सम्पर्क करे।

प्रो. रतनचन्द्र जैन

वीतरागी से अनुराग

आचार्य महाराज संघ सहित विहार कर रहे थे। खुरई नगर में प्रवेश होने वाला था। अचानक एक गरीब-सा दिखने वाला व्यक्ति साईकिल पर अपनी आजीविका का सामान लिए समीप से निकला और थोड़ी दूर आगे जाकर ठहर गया। जैसे ही आचार्य महाराज उसके सामने से निकले, वह भाव-विह्वल होकर उनके श्रीचरणों में गिर पड़ा। गद्गद कंठ से बोला कि 'भगवान राम की जय हो।' आचार्य महाराज ने क्षण भर को उसे देखा और अत्यन्त करुणा से भरकर धर्मवृद्धि का आशीष दिया और आगे बढ़ गए। वह व्यक्ति हर्ष-विभोर होकर बहुत देर तक, आगे बढ़ते हुए आचार्य महाराज की वीतराग छवि को अपलक देखता रहा।

इस घटना को सुनकर मुझे लगा कि वीतरागता के प्रति अनुराग हमें अनायास ही आत्म-आनंद देता है। उन क्षणों में उस व्यक्ति की आँखों में आचार्य महाराज की वीतराग छवि अत्यन्त मधुर और दिव्य रही होगी, जो हम सभी को आत्म-कल्याण का संदेश देती है। खुरई (1988)

मुनि श्री क्षमासागर-कृत 'आत्मान्वेषी' से साभार

गिरनारजी की पाँचवी टोंक पर यात्री पर खूनी हमला

गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री जयन्तजी पटेल द्वारा 17 फरवरी 2005 को आदेश दिया गया था, कि गिरनार जी पहाड़ की पाँचवीं, भगवान् नेमिनाथ जी की टोंक पर अगले आदेश तक दिगम्बरजैन व हिन्दू अपनी-अपनी पद्धति से पूजा-उपासना कर सकेंगे। इस आदेश के बाद भी इस पाँचवीं टोंक पर हिन्दू पण्डे न केवल बैठे रहते हैं, बल्कि जैन यात्रियों को न चरण छूने देते हैं, न नेमिनाथ भगवान् की जय बोलने देते हैं, न माला फेरने देते हैं और चरण को फूलों से ढक कर रखते हैं, भगवान् के चरण की मात्र अँगुलियों के दर्शन जैन यात्री कर पाते हैं, वह भी पण्डों की मर्जी के अनुसार। टोंक पर स्थित भगवान् की प्रतिमा की पूजा-अर्चना करना तो असंभव जैसा है।

गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति जयन्तजी पटेल के आदेश का पालन कराने हेतु पाँचवीं टोंक पर स्थायी रूप से पुलिस व्यवस्था की गयी है।

व्यवहार में दिगम्बर जैन समाज के यात्रियों को उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार पाँचवीं टोंक पर अपनी धार्मिक क्रियाएँ करने से पण्डों द्वारा लगातार रोका जा रहा है। न्यायालय के आदेश की अवहेलना और अवमानना सतत की जा रही है। पुलिस के होते हुए भी जैन यात्रियों के साथ पण्डों द्वारा मारपीट की जा रही है।

अभी-अभी बुधवार 17 अक्टूबर 2007 को प्रातः दिगम्बरजैन यात्री गिरनार जी पहाड़ की वन्दना करने गये थे। इनमें श्री सुगनचंद जी जैन, सहायक वाणिज्य-कर अधिकारी, वृत्त-झाबुआ अपनी पत्नी, जीजा जी तेजमल जी जैन निवासी धनगाँव तहसील जावद, परिवार-जन सहित कुल छोटे-बड़े 18 यात्री पहाड़ पर गये थे। श्री सुगनचंद जी जैन भगवान् नेमिनाथ जी के चरण की वन्दना कर रहे थे। उपस्थित पण्डे ने डण्डे से दो बार प्रहार श्री जैन पर किये। एक प्रहार सिर पर किया गया जिससे खून बहना प्रारंभ हो गया। दूसरा प्रहार उनके हाथ पर किया गया।

चौकी पर उपस्थित पुलिस जवानों को खून से लथपथ जैन ने जानकारी दी, तो उन्होंने कोई सहायता नहीं

की। उलटे रिपोर्ट लिखाने के लिये निरुत्साहित किया।

इसी दिन बुधवार 17 अक्टूबर को ही श्री जैन पुलिस थाना गिरनार जी जूनागढ़ गये और रिपोर्ट लिखाई। साथ ही शासकीय चिकित्सालय में उनकी मरहम पट्टी की गयी। उनके सिर में दो टाँके लगाये गये। एक सप्ताह निकल जाने पर भी गुजरात सरकार की पुलिस ने मारपीट करनेवाले पण्डे के विरुद्ध न कोई कार्यवाही की और न ही गिरफ्तारी की।

इसके विपरीत यह होता है कि अनेक यात्री अपने साथ पण्डों द्वारा गाली-गलौच, दुर्व्यवहार, मारपीट किये जाने पर भी पुलिस रिपोर्ट आदि इसलिये नहीं करते कि बाद में आने-जानेकी परेशानी होगी। इसका फायदा उठाते हुए ये पण्डे जैन यात्रियों को और ज्यादा आतंकित करते रहते हैं।

निश्चित ही हमारे यात्री सुगनचंद जी बधाई के पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने भगवान् नेमिनाथ जी के क्षेत्र के हित में प्रताड़ित होने पर साहस के साथ कानूनी कार्यवाही की। ऐसी रिपोर्ट से न्यायालय में समाज का पक्ष मजबूत होगा। श्री गिरनार जी राष्ट्र स्तरीय एक्शन कमेटी व संस्थाओं को चाहिए कि श्री सुगनचंद जी जैन का यथोचित सम्मान करें।

हमारे दिगम्बरजैन समाज के शाश्वत तीर्थ श्री सम्मेद शिखर जी, श्री अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ और केसरिया जी के मामले सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में और गिरनारजी-संबंधित 5 प्रकरण गुजरात उच्च न्यायालय में हैं। एक-एक मामले में वकीलों की फीस तथा अन्य खर्च मिलाकर लाखों रुपये खर्च हो रहे हैं। यही समय समाज को चेतने का है। हर व्यक्ति, परिवार को जितना अधिक से अधिक हो सके आर्थिक सहयोग आगे बढ़कर प्रदान करना चाहिए। न्यायालयों में समाज का पक्ष मजबूत न होने पर आर्थिक कारणों से अगर फैसला हमारे खिलाफ चला जायगा तो हम शाश्वत तीर्थ शिखर जी, गिरनार जी की वन्दना करने कहाँ जावेंगे? हमारा सिद्धक्षेत्र का इतिहास हमसे छिन जायेगा तो हमारा क्या बचेगा? जागने-जगाने का समय आज और अभी है। चारों धर्म क्षेत्रों के न्यायालय में प्रकरण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, मुंबई लड़ रही है। आर्थिक-सहयोग-दाता चाहें तो उन्हें धारा 80-जी की छूट का लाभ भी मिल सकता है। सहायता-राशि कमेटी

के नाम से बैंक ऑफ इण्डिया, सी.पी. टैंक मुंबई के सेविंग खाता नम्बर 001210100017881 अथवा बैंक ऑफ बड़ौदा, वी.पी. रोड, मुम्बई के सेविंग खाता नं. 13100100008770 में बैंकों की किसी भी शाखा में जमा करा सकते हैं। कोई भी शुल्क नहीं लगेगा।

निर्मलकुमार पाटोदी

सम्पर्क : मुम्बई (022-23878293),
कोषध्यक्ष जम्बूकुमार सिंह
(मो.: 093735-01918), इन्दौर

शास्त्र परिषद् एवं विद्वत्परिषद् (रजि.) का संयुक्त खुला अधिवेशन एवं मूलाचार अनुशीलन विद्वत्संगोष्ठी संपन्न

बांसवाड़ा, “शास्त्र परिषद् एवं विद्वत्परिषद् मेरे दो हाथ हैं और मेरा दोनों हाथों से दोनों परिषदों के विद्वानों को आशीर्वाद है कि वे देव-शास्त्र-गुरु के संरक्षण हेतु सजग रहकर कार्य करें। साधुओं के शिथिलाचार को रोकने हेतु प्रयत्न करें और आगम की रक्षा करें।” यह विचार राजस्थान के प्रसिद्ध नगर बांसवाड़ा में वर्षायोग हेतु विराजित परम जिन धर्म प्रभावक, आध्यात्मिक संत, मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज ने लगभग २०० विद्वानों एवं विशाल जनसमूह के मध्य संयुक्त अधिवेशन में व्यक्त किये। उल्लेखनीय है कि मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री गंभीरसागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य में रविवार, दिनांक २८ अक्टूबर, सन् २००७ को श्री श्रेयांसनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, खान्दू कॉलोनी, बांसवाड़ा (राजस्थान) में दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् (रजि.) का द्वितीय संयुक्त अधिवेशन संपन्न हुआ। जिसमें अधिवेशन के पूर्व निर्धारित विषयों १. उदयपुर अधिवेशन में पारित ११ सुत्रीय समाज के नाम अपील की समीक्षा, २. विश्व विद्यालयों में जैन चैयर की स्थापना पर विचार, ३. जैन परम्परानुकूल धार्मिक एवं समाजिक संस्कारों का ह्रास कारण एवं निदान, ४. सामाजिक एवं धार्मिक समरसता की आवश्यकता, ५. सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयोजनों में विद्वानों की अनिवार्यता पर विद्वानों एवं समाज के मध्य व्यापक विचार-विमर्श हुआ। इस अवसर पर प.पू. मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज की प्रवचन कृति- धर्मप्रीति-सुधा (संपादक-डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन, सनावद), भगवती आराधना अनुशीलन (संपादक- डॉ. प्रेमसुमन जैन, डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. उदयचंद जैन, प्रा. अरुणकुमार जैन),

विद्वत्परिषद् के मुखपत्र- विद्वद्-विर्मश (संपादक-डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती') बुरहानपुर से प्रकाशित पार्श्व ज्योति मासिक (वरिष्ठ संपादक - डॉ. रमेशचन्द जैन), भारतीय दर्शन के महामेरु आचार्य श्री समन्तभद्र (लेखक-डॉ. नेमिचन्द्र जैन, खुरई) का विमोचन किया गया। अधिवेशन को प्रमुख रूप से डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, डॉ. शीतलचन्द जैन, डॉ. सुरेन्द्र भारती, डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. सुरेशचन्द जैन, पं. शैलेश शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्र जैन, पं. जयंतकुमार जैन, पं. सनतकुमार जैन, पं. पवन जैन आदि ने संबोधित किया। इस अवसर पर कतिपय तत्वों द्वारा फैलाये जा रहे दुष्प्रचार पर उस समय विराम लग गया, जब पूज्य मुनिश्री के कहने पर सभी विद्वानों एवं अधिवेशन में उपस्थित जनसमूह द्वारा दिवंगत आचार्य श्री भरतसागर जी को नौ बार णमोकार मंत्र के स्मरण पूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

संयुक्त अधिवेशन में आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विर्मश केन्द्र की ओर से पं. अभयकुमार जैन (बीना), डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत), डॉ. कमलेशकुमार जैन (वाराणसी), डॉ. अशोककुमार जैन (वाराणसी) एवं डॉ. सुरेशचन्द जैन (नई दिल्ली) को प्रतिष्ठित महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर पुरस्कार शाल, श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र एवं ५१०००००. के साथ प्रदान किये गये। इन पुरस्कारों में दो पुरस्कार श्री विनयकुमार जैन, विवेककुमार जैन, श्रीमती आभा जैन, (अहमदाबाद), एक पुरस्कार श्री राजेन्द्रकुमार नाथूलाल जैन मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट की ओर से ट्रस्टी श्री ज्ञानेन्द्र गदिया, संजय गदिया, नीरज गदिया (सूरत), ने तथा एक पुरस्कार श्री नरसिंगपुरा दिगम्बर जैन समाज, खांदू कॉलोनी, बांसवाड़ा की ओर से प्रदान किये गये। इसी श्रृंखला में अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष दिये जाने वाले क्षु. श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति विद्वत्परिषद् पुरस्कार से पं. निहालचंद जैन (बीना) को जैन धर्म की प्रभावना हेतु तथा गुरुवर्य गोपालदास वरैया स्मृति विद्वत्परिषद् पुरस्कार से डॉ. लालचंद्र जैन (आरा) को उनकी कृति उड़ीसा में जैन धर्म के लिए पुरस्कृत किया गया। इन दोनों पुरस्कारों को पुण्यार्जक श्री राजेन्द्रकुमार नाथूलाल जैन मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट की ओर से ट्रस्टी श्री ज्ञानेन्द्र गदिया ने प्रदान किया। पुरस्कृत विद्वानों का परिचय डॉ. जयकुमार जैन, डॉ. विजयकुमार जैन, पं. निहालचंद जैन ने दिया। इस अवसर पर श्रमण संस्कृति

संस्थान, सांगानेर के लिए दी गई सेवाओं के लिए पं. रतनलाल जी बैनाड़ा का अभिनंदन किया गया। अधिवेशन की अध्यक्षता डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (अध्यक्ष-शास्त्र परिषद्) एवं डॉ. शीतलचंद जैन (अध्यक्ष-विद्वत्परिषद्) ने की। संचालन दोनों परिषदों के मंत्री- प्रो. अरुणकुमार जैन एवं डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन भारती ने किया। अ.भा.दि. जैन शास्त्र परिषद् एवं अ.भा.दि. विद्वत्परिषद् के द्वारा संयुक्तरूप से पारित प्रस्ताव इस प्रकार है-

प्रस्ताव-१. 'दिग्विजय' पत्रिका की अनर्गल टिप्पणियों की भर्त्सना और निंदा-

अ.भा.दि.जैन शास्त्र परिषद् एवं अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् का यह संयुक्त अधिवेशन दि. ४ अक्टूबर, २००६ को उदयपुर, राज. में आयोजित संयुक्त अधिवेशन में समाज के नाम जारी ११-सूत्रीय अपील के संदर्भ में इंदौर से श्री हेमन्त काला, श्री भरत काला आदि के संपादकत्व में प्रकाशित 'दिग्विजय' पत्रिका में एवं उदयपुर आदि में आयोजित सभाओं में जन-जन के आराध्य परम पूज्य संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं उनके आज्ञानुवर्ती शिष्य मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज के विषय में जो अनर्गल टिप्पणियाँ की गई है, उसकी हम घोर भर्त्सना एवं निंदा करते हैं तथा इस प्रवृत्ति को निर्दोष साधुओं के चारित्र को मलिन बनाने का कुत्सित प्रयास मानते हैं इस प्रवृत्ति की अ.भा.दि. जैन शास्त्र परिषद् एवं अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् एक स्वर से निंदा करती हैं।

मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज के संघस्थ पूज्य क्षुल्लक द्वय के मात्र क्षुल्लक ही बने रहने, मुनि न बनने की निराधार बात कहकर जो आलोचना की है वह आगम विरुद्ध है।

प्रस्तावक- पं. जयंतकुमार जैन शास्त्री, सीकर, समर्थक- पं. सनतकुमार जैन, खिमलासा, डॉ. विमला जैन, फिरोजाबाद संयुक्त अधिवेशन में सर्वसम्मति से पारित डॉ. श्रेयांस कुमार जैन एवं डॉ. शीतलचंद जैन के हस्ताक्षरों से प्रमाणित/स्वीकृत।

प्रस्तावक-२. जैन विद्या अध्ययन एवं अनुशीलन केन्द्र स्थापना की सराहना-

अ.भा.दि.जैन शास्त्र परिषद् एवं अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद् का यह संयुक्त अधिवेशन सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित करता है कि वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर, में

जुलाई, २००७ से स्थापित जैन विद्या अध्ययन एवं अनुशीलन केन्द्र की स्थापना एक शुभ कार्य है, जो जैन संस्कृति एवं धर्म के प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से परम उपयोगी है। एतदर्थ यह अधिवेशन कॉलेज प्रबंध समिति के माननीय अध्यक्ष श्री रविप्रकाश जैन एवं सचिव श्री कान्तिप्रकाश जैन तथा समस्त पदाधिकारी एवं सदस्यों के इस सार्थक प्रयत्न का हार्दिक अनुमोदन करता है तथा भविष्य में केन्द्र की अभिवृद्धि की हार्दिक कामना करता है।

प्रस्तावक- डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर, समर्थक- डॉ. विजयकुमार जैन, लखनऊ

अधिवेशन से पूर्व दि. २५ से २७ अक्टूबर तक मूलाचार अनुशीलन चतुर्दश राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी संपन्न हुई जिसमें ४३ विद्वानों, विदुषियों ने शोध पत्रों का वाचन किया तथा शताधिक विद्वानों ने चर्चा में भाग लिया। संगोष्ठी एवं अधिवेशन के पुण्यार्जक श्री हंसराज जी के सुपुत्र सर्वश्री अमृतलाल, नरेन्द्रकुमार, शरदकुमार, संतोषकुमार जैन, खान्दू कॉलोनी, बांसवाड़ा थे। इस अवसर पुण्यार्जक श्री शरद जैन ने आयोजन को अभूतपूर्व बताते हुए कहा कि हमारी अनेक उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझ गयी हैं। उन्होंने कहा कि यदि मुनि श्रावकाचार पढ़ें तो वे जान लेंगे कि हम (श्रावक) कैसे हैं? और हम मूलाचार पढ़ें तो हम भी जान लेंगे कि वे (मुनि) कैसे हैं? इस अवसर पर अपने शुभाशीर्वाद में परम पूज्य मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी महाराज ने कहा कि- साधुता की कसौटी मूलाचार है और सभी साधुओं को इसी के अनुसार अपनी चर्चा और चर्चा करना चाहिए। शिथिलाचार न कभी स्वीकार्य था और न कभी स्वीकार होगा।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन
मंत्री- अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्,
एल-६५, न्यू इंदिर नगर, बुरहानपुर

**संयम, सेवा, त्याग, परमार्थ से जुड़ी अनूठी
आचार्य भक्ति**

इन्दौर 22 नवम्बर 2007। संत शिरोमणी 108 आचार्यश्री विद्यासागर जी एक ऐसे महान् संत हैं जिनके चरणों में जैन-अजैन समाज रूप से श्रद्धा के साथ नत-मस्तक हो जाते हैं। ऐसे आत्म कल्याणी महासंत का 36वाँ आचार्य पद पदारोहण दिवस आज तुकोगंज स्थित उदासीन श्रावक आश्रम मंदिर परिसर में भक्तिभाव से मनाया गया। संयम, सेवा, त्याग, परमार्थ के इस आयोजन के जो भी

साक्षी बने वे गुरुवर की ऐसी आराधना को देखकर दंग रह गये, स्वयम् के भाग्य को सराहे बिना नहीं रह सकें।

आचार्यश्री विद्यासागर जी के प्रभावक शिष्य 105 ऐलक श्री निःशंकसागरजी महाराज के सुसान्निध्य और लायंस क्लब रीजन इन्दौर के डॉ. के.बी. माहेश्वरी, अध्यक्ष राजेन्द्र सिंह जी चौहान, ला. सचिन जी जैन तथा विकलांगों के लिये विशेष समर्पित विनयजी जैन के सहयोग और उपस्थिति में मानवता के सेवार्थ 38 विकलांग पीड़ित बंधुओं को तीनपहिया सायकिलें प्रदान की गईं। ऐलकश्री ने कहा कि आप पतित पावन बनें, महान् बनें। मन से, आत्मा से परेशान न हों। आज की शारीरिक कमजोरी पूर्व जन्म के कर्मों से है। अब मानवता को बदनाम करने वाला कार्य न करें तथा समाज के सहयोग को परमात्मा को स्मरण करते हुए स्वीकार करें।

निर्मलकुमार पाटोदी, इन्दौर

संतमना सिंघई जीवन कुमार जी का 80वाँ

जन्म दिवस समारोह सम्पन्न

सागर/बी.एस.जैन धर्मशाला सागर में एक सादे गरिमामय समारोह में सिंघई जीवन कुमार जी के 80वें जन्म दिवस पर जैन समाज के प्रतिष्ठित वरिष्ठजन, व्यापारीजन एवं शुभचिंतक उपस्थित हुये। समाजसेवी, दानवीर, जैन जाति भूषण सिंघई कारेलाल कुन्दनलाल जी के परिवार में जन्में सिंघई जीवन कुमार ने अपने परिवार के संस्कारों के अनुरूप अपने जीवन को ढाला। वे पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी के गृहस्थ जीवन के पिताश्री हैं। अपने मृदुव्यवहार, संतसेवा, उच्च विचार एवं एक आदर्श पुरुष

के रूप में ख्यात हैं। उनके बारे में मुनि श्री क्षमासागर जी की कविता की निम्न पंक्तियाँ सटीक हैं।

यह जानते हुए भी

कि किसी को कुछ नहीं दे पाऊँगा,

दिया भी नहीं जा सकता

मन करता है

कि अपने को समूचा दे दूँ।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमंत सेठ डालचंद जी ने अपने संबोधन में कहा कि सिंघई जी की धार्मिक सेवा पैतृक संपत्ति के रूप में उन्हें मिली है। धार्मिक संस्कारों का पालन करते हुए उनकी अगली पीढ़ी भी इस दिशा में अग्रसर है। ऋषभ समैया, निर्मलचंद निर्मल, नेमिचंद विनम्र ने अपनी काव्यांजलि भेंट की। श्री कपूरचंद घुवारा विधायक एवं अध्यक्ष हस्तशिल्प निगम म.प्र. शासन ने इस अवसर पर कहा कि सन् 1992 से मैं सिंघई जी के निकट सान्निध्य में हूँ। उनमें मैं पूज्य वर्णी जी की छवि देखता हूँ। श्रीमती सुधा जैन 'विधायक' सागर ने इस अवसर पर कहा कि समाजसेवा में अग्रणी, "सादा जीवन उच्च विचार" को जीवन्त करने वाले श्री सिंघई जी ने समाज को अपने उच्च आदर्शों से संस्कारित किया व मार्गदर्शन दिया है। उनका आशीर्वाद दीर्घ काल तक हमें मिलता रहे। इस अवसर पर सेठ मोतीलाल जी, डॉ. जीवन लाल जी, डॉ. भागचंद जी भागेन्दु दमोह, वीरेन्द्र कुमार जी इटोरिया दमोह, महेन्द्र कुमार जी सिंघई, जबलपुर व अभिनंदन सांधेलीय पाटन ने सभा को संबोधित किया।

अभिनंदन सांधेलीय, पत्रकार

पराया घर

भोपाल में महावीर जयंती मनाने के उपरान्त सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र नेमावर की ओर विहार हो गया। कुछ दिन पश्चात् हमारे पैर में दर्द शुरु हो गया कारण 'हरपिश' रोग हो गया यह बड़ा खतरनाक पीड़ादायक रोग माना जाता है। मैंने आचार्य श्री जी से कहा कि न जाने आचार्य श्री जी कौन से कर्म का उदय आ गया जो इतना बड़ा रोग घेर गया। आचार्य श्री जी ने कहा, भैया— "यह कर्म का उदय पराये घर के समान है।" जिसमें हमारी कुछ नहीं चलती। आचार्य श्री ने हमें एक ऐसा सूत्र दिया जिसके माध्यम से जीवन में आये हुये कर्मों के उदय को हम समता के साथ सहन कर सकते हैं।

मुनि श्री कुंथुसागर-कृत 'संस्मरण' से साभार



मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

सम्बन्ध

नदी बहती है सदा
किनारे बन जाते हैं ।
नदी बदलती है रास्ता
किनारे मुड़ जाते हैं ।
नदी उफनती है कभी
किनारे डूब जाते हैं ।
नदी समा जाती है सागर में
किनारे छूट जाते हैं ।
सम्बन्धों की सार्थकता
मानो जीवन के प्रवाह की
पूर्णता में है ।

चिड़िया

मैं देखता हूँ
चिड़िया
रोज आती है ।
और मैं जानता हूँ
वही चिड़िया
रोज नहीं आती ।
पर यह दूसरी है
मैं ऐसा कैसे कहूँ !
अच्छा हुआ
मैंने कोई नाम नहीं दिया
उसे चिड़िया ही
रहने दिया ।

पीड़ा

घर का
बँटवारा हो गया
जमीन-जायदाद
सब बँट गयी,
अमराई और कुँआ भी
आधे-आधे हो गये,
अब मेरे हिस्से में मेरा
और उसके हिस्से में
उसका आकाश है ।
सवाल यह नहीं है
कि किसे कम मिला
और किसके हिस्से में
ज्यादा आया है,
मेरी पीड़ा
अपने ही
बँट जाने की है ।

बँटवारा

आकाश सबका
दीवारें हमारी अपनी
नदी सबकी
गागर हमारी अपनी
धरती सबकी
आँगन हमारा अपना
विराट सबका
सीमाएँ हमारी अपनी ।

‘अपना घर’ से साभार

बारह भावना

रचयिता — मुनि श्री सुव्रतसागर जी
संघस्थ — आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज

छन्द जोगीरासा (दोहा)

देवशास्त्र गुरु को नमूँ, सम्यक् संयम काज ।
ध्यायो बारह भावना, पाने शिव-सुख राज ॥

अनित्य भावना

सुख वैभव नर देव संपदा, मात-पिता जन सारे ।
ज्ञान रूप यौवन वय तन बल, तेज कान्ति सब न्यारे ॥
इन्द्रधनुष जल बुदबुद जैसी, क्षण भंगुर जग धारा ।
यों अनित्य भावना चिन्तो, नित्य आत्म व्यवहारा ॥

अशरण भावना

चक्री सुर अहमिन्द्र आदि को यम चेली आ घेरे ।
मंत्र तन्त्र विद्या बल औषध, कोई शरण न तेरे ॥
किला शस्त्र सेनाएँ सारी, मरते नहीं बचावें ।
यही भावना अशरण चिन्तो, शरण आत्म निज ध्यावें ॥

एकत्व भावना

जीव अकेला कर्म करे सब, सुख-दुख सहे अकेला ।
एक अकेला भव-भव भटके, जन्मे मरे अकेला ॥
निज-जन, पर-जन साथ न देते, साथ न दे गुरु चेला ।
यों एकत्व भावना चिन्तो, रहता जीव अकेला ॥

अन्यत्व भावना

मात-पिता सुत दारा बांधव, मित्र सभी जन प्यारे ।
तन चेतन से अन्य रहा तो, कहें किसे अपना रे ॥
मोहभाव से पर द्रव्यों को, निज कहता अज्ञानी ।
यों अन्यत्व भावना चिन्तो, अपना जिय दृगज्ञानी ॥

संसार भावना

जिनमत में श्रद्धा बिन सब ही, भव वन में भटके हैं ।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहते हैं ॥
सभी योनि में सब गतियों में, जनम मरण दुख पाते ।
यों संसार भावना चिन्तो, बस शिव में सुख पाते ॥

अशुचि भावना

चारों गतियाँ अशुचि यहाँ नित, इन्द्रिय सुख, दुखकारी ।
खून पीप मल आदिक अन्दर, बाह्य देह पर प्यारी ॥
जगत काय ये बाहर सुन्दर, किन्तु अशुचि भीतर हैं ।
अशुचि भावना ऐसी चिन्तो, शुचि निज आत्मधर हैं ॥

आस्रव भावना

नाव छिद्रमय जैसे डूबे, पानी भर जाने से
त्यों भव सागर में हम डूबें, कर्मों के आने से ।
मिथ्या अविरति कषाय योग हि, सब आस्रव के द्वारे
यही भावना आस्रव चिन्तो, बुद्ध निरास्रव सारे ।

संवर भावना

छिद्र डाट से नीर न आवे, नाव किनारा पावे
त्यों संवर कर्मास्रव रोके, भव से पार लगे ।
दर्शन व्रत शम दम धर्मों से, कर्मास्रव को रोके
यही भावना संवर चिन्तो, शुद्ध आत्म नित सोचें ।

निर्जरा भावना

पके आम झड़ते डाली से, त्यों सविपाक सभी के
पाल पकावे माली जैसे, हो अविपाक सुधी के
जिनकारण से संवर होता, देश निर्जरा उतरे
यही भावना निर्जर चिन्तो, सकल मोक्ष हो जिन

लोक भावना

सहज लोक अलोक अनादि हैं, सदा सिद्ध वह जग
ताल वृक्ष, नर हाथ कटी सम, छहों द्रव्य मय जग
सहे कर्म निजजीवलोक में, भव-भव में नित भग
लोक भावना ऐसी चिन्तो, सुख पाओ शिव रम

बोधिदुर्लभ भावना

निगोद-थावर-त्रसगति-नर-तन, जन्म देश कुल दुर्लभ
स्वस्थ देह जिनश्रद्धा दुर्लभ, श्रावक संयम दुर्लभ
बोधि समाधि धर भव घूमें, केवल ज्ञान बिना ही
बोधि भावना दुर्लभ यों लख, तू बन नहीं प्रमदा

धर्म भावना

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर तीर्थंकरों के द्वारा ।
कथित 'अहिंसा परमोधर्मः' दस विधमय सुखकारा ॥
मुझे मिले सद्धर्म इसी से, अक्षय मोक्ष मिलेगा ।
धर्म भावना ऐसी चिन्तो, नित दुर्धर्म छलेगा ।

दोहा

ये जननी वैराग्य की, 'सुव्रत' रखे सँभाल ।
चिन्तो बारह भावना, होओ मालामाल ॥